गौरवमयी काशी

धान मंत्री से श्रीमुकुन्द लाल काशी के उत्थान के लिए वार्ता करते हुए

काशी

[प्रसिद्ध तीर्थ]

वाराणसी

संकलनकर्त्ता एवं प्रकाशक

मकुन्दलाल सर्राफ

[अध्यक्ष काशी तीर्थ-सुधार-ट्रस्ट]

राजादरवाजा, वाराणसी

गणतन्त्र-दिवस

२६ जनवरी १९६१

प्रकाशक—
अध्यक्ष
काशी तीर्थ सुधार-ट्रस्ट
वाराणसी,

प्रथम संस्करण : ११२५

मुद्रक—
बलदेवदास
संसार प्रेस, संसार लिमिटेड
काशीपुरा, वाराणसी

दो शब्द

काशी का अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है। इसे सदैव से धर्म, विद्या एवं संस्कृति का केन्द्र कहा गया है। अत्यन्त प्राचीनकाल से ही हर भारतवासी के हृदय में काशी के प्रति महान श्रद्धा का भाव रहा है। आज भी न केवल भारत में वरन विदेशों में भी काशी के प्रति लोगों की उच्च धारणा है और प्रत्येक व्यक्ति इसका अवलोकन अवश्य करना चाहता है। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में पर्यटक एवं यात्रीगण काशी आते हैं। यहाँ के अति प्राचीन घाट एवं मन्दिरों में बाबा विश्वनाथ का दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं। परन्तु समय के चक्र के साथ यहां भी अनेक बुराइयाँ व्याप्त हो गई हैं। घाट भी निरंतर पानी के कटाव के कारण जर्जर अवस्था में पहुँच गये हैं।

काशी के सर्वांगीण सुधार के उद्देश्य से ही १९२६ में "काशी तीर्थ सुधार ट्रस्ट" की स्थापना हुई थी और इस संस्था के तत्वावधान में घाटों का विशेष रूप से सर्वेक्षण हुआ और इसके सुधार के लिये सक्रिय रूप से कार्य किया परन्तु जो कुछ भी हुआ है उसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

काशी को सर्वांगीण सुन्दर एवं स्वस्थ अवस्था में देखूँ यह मेरी चिर-अभिलाषा रही है और इस संबंध में समय-समय पर मैं अपने विचार प्रस्तुत करता रहा हूँ। समाचार-पत्रों में भी प्रायः इसके गौरव की गाथा एवं सुधार के लिए निबंध इत्यादि प्रकाशित होते रहते हैं। उन्हीं निबंधों का एक छोटा सा संकलन मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे काशी वासी उसके प्राचीन गौरव का बोध कर सकें तथा उसी के अनुरूप पुनः इसका यश लाने का प्रयत्न करें।

इन संकलनों के द्वारा यदि मैं आपके हृदय में काशी के सुधार की कुछ भी भावना प्रस्फुटित कर सका तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा। अंत में जिन लेखकों के ये निबंध हैं तथा जिन समाचार-पत्रों से मैंने लिया है उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ। —मकुन्दलाल

प्रधान मंत्री की सफलता की कामना

भारत के प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने वाराणसी जिले के रामनगर में जन्म लिया।

काशी में ही उनकी शिक्षा दीक्षा हुई। यहीं उन्होंने स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लिया।

आप के गुणों से प्रभावित होकर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपना सहायक चुना।

आप के गुणों एवं कर्त्तव्य-परायणता से मुग्ध होकर जनता के प्रतिनिधियों ने आप को प्रधान मंत्री के पद पर आसीन किया है।

इस कारण काशी को महान गर्व है। काशी-वासियों को अपूर्व आनन्द है।

बाबा विश्वनाथ से, आप की सफलता की, हम अपनी तथा काशी वासियों की ओर से कामना करते हैं। ताकि देश का कल्याण हो और इस युग के इतिहास में भी आप की सफलता के कारण काशी का गौरव बढ़े।

मकुन्दलाल सर्राफ

काशी की सांस्कृतिक देन

वाराणसी भारतवर्ष का बहुत प्राचीन विद्यापीठ और धर्मस्थान रही है। सम्भवतः भारतवर्ष की जीवित नगरियों में कोई भी ऐसी नहीं है जिसके विद्याकेन्द्र होने का इतिहास इतना पुराना हो। वैदिक काल में और बौद्धकाल में वाराणसी निर्विवाद रूप से ज्ञान-साधना का केन्द्र रही। भगवान् बुद्ध को जब बोधि-लाभ हुआ तो उसे संसार-व्यापी करने के लिए वाराणसी ही उन्हें उत्तम ज्ञान-प्रसार केन्द्र जँची। यहीं आकर उन्होंने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। जैन ग्रन्थों में भी वाराणसी की महिमा स्वीकृत हुई है। मध्यकाल में शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, रामानन्द, कबीर, तुलसीदास आदि जगत्-प्रसिद्ध धर्माचार्यों ने वाराणसी को ज्ञान के प्रसार का केन्द्र बनाया था। संस्कृत-शिक्षा के लिए काशी की प्रसिद्धि सारे भारतवर्ष में है।

[१७-२-५७ के आज में छपे डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेख से]

वारेन हेस्टिंग्ज को प्रमाणपत्र

सन् १७९३ ईसवी में वारेन हेस्टिंग्ज के अच्छे चरित्र और व्यवहार के विषय में काशी के पंडितों ने एक प्रमाणपत्र दिया था। वारेन हेस्टिंग्ज भारतवर्ष के गवर्नर जनरल थे। उन्हें अपनी सच्चरित्रता प्रमाणित करने के लिए काशी के पंडितों से प्रमाणपत्र लेना पड़ा, यह तथ्य सूचित करता है कि आज से दो सौ वर्ष पहले तक काशी की पंडित-सभा कितनी महत्वपूर्ण संस्था थी। एक दूसरा प्रमाणपत्र १८५३ ईसवी में लिखा गया जिसमें हिन्दू मुसलमान सब की तरफ से उनका चरित्र-गुण प्रशंसित करने की बात थी पर हस्ताक्षर करनेवाले अधिकांश काशी के पंडित ही थे। मुसलमानों में से तो किसी का हस्ताक्षर नहीं था।

इस पर भी ६७ पंडितों के हस्ताक्षर हैं। इन दोनों व्यवस्थाओं से स्पष्ट हो जाता है कि १८ वीं शताब्दी में काशी की पंडितसभा में देशभर के विद्वान् सम्मिलित थे।

[१७-२-५७ के 'आज' में छपे डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेख से]

काशी की बहुमूल्य देन

काशी की सबसे बहुमूल्य देन विचार, भावना, विश्वास और जीवन के प्रति दृष्टिकोण के सम्बन्ध में है। शिव की इस नगरी में एक विचित्र प्रकार की तटस्थता, विरक्ति और मस्तानापन है जिसको आधुनिक भौतिक प्रभाव भी नष्ट करने में असमर्थ हैं। इसीलिए काशी शिव के त्रिशूल पर स्थित और तीनों लोकों से न्यारी कही गयी है।

काशी भारत की प्राचीनतम नगरियों में से है। पौराणिक परम्परा के अनुसार अयोध्या, प्रतिष्ठान (=प्रयाग के पास झूंसी), गया और कान्यकुब्ज के पश्चात् शीघ्र ही काशी जनपद की स्थापना हुई और उसकी राजधानी काशी नाम से प्रसिद्ध हुई। राजनैतिक महत्व के अतिरिक्त इसके साथ धार्मिक पवित्रता तथा शास्त्र, विद्या एवं शिक्षण की गुरुता भी लग गयी। इन कारणों से देश के सांस्कृतिक जीवन के एक महान् केन्द्र के रूपमें काशी का विकास हुआ। काशी ने संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी अमर देन दी और आज तक देश की बुद्धि, भावना और विश्वास को प्रभावित करती आ रही है।

—डा० राजबली पाण्डेय

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	काशी	१
२.	काशिराज और राजा भोज	८
३.	विभिन्न संप्रदायों का पीठ काशी	१३
४.	बौद्ध तीर्थ सारनाथ	२२
५.	जैन आचार्यों की उपदेश भूमि काशी	३०
६.	काशी का विश्वनाथ मन्दिर	३७
७.	अष्टकूप नौ बावली	४९
८.	काशी परिक्रमा	५३
९.	काशी के घाट	६०
१०.	काशी का पौराणिक महाश्मशान	६५
११.	बाबा कीनाराम	६७
१२.	काशी का संक्षिप्त इतिहास	७२
१३.	काशी राज्य	८२
१४.	यह वाराणसी है	९१
१५.	वाराणसी का दर्शन	१०२
१६.	काशी के प्रमुख बाजार और मंडियाँ	१०८
१७.	बनारसी कीन खाब	११३
१८.	गोला दीनानाथ	११६
१९.	अखाड़े और व्यायामशालाएँ	१२७
२०.	काशी के जनकवि	१३०
२१.	काशी के मेले-तमाशे	१३२
२२.	बाहरी अलंग और साफा-पानी	१३६

२३. स्वतन्त्रा संग्राम में काशी का योग-दान १३८
२४. नदेसर कोठी में जब नंगी तलवार चली १४६
२५. शिवजी का प्रिय रुद्राक्ष १५३
२६. वाराणसी का निर्माण ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व १५८

चित्र सूची

१. वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय ५
२. मूलगंधकुटी विहार; बरमी मंदिर (सारनाथ) २४ क
३. दलाईलामा का निवास स्थान; सारनाथ का नया रेलवे स्टेशन २४ ख
४. काशी विश्वनाथ मंदिर; भारतमाता मंदिर ३८ क
५. मालवीय वृज—राजघाट; बिरला छात्रावास (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ३८ ख
६, शिवाला घाट; अहिल्याबाई घाट ४६
७. दशाश्वमेध घाट; प्रयाग घाट ५१
८. मणिकर्णिका घाट; मणिकर्णिका तीर्थक्षेत्र ६२
९. पंचगंगा घाट (धरहरा सहित); पंचगंगा घाट (१ धरहरा सहित) ६२

काशी

आदिकाल से पतित पावनी काशी भगवान शंकर के त्रिशूलपर स्थित विश्वकी प्राचीनतम नगरी है। पुण्य-सलिला भागीरथी की पुण्योज्ज्वलधार यहाँ द्वितीया के वक्रचन्द्र का निर्माण करती हुई अग्रसर होती है। हीरक-सी सोहती इस धवलधार के तटपर बसी हुई काशी संसार में अपनी समता नहीं रखती और संभवतः इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध होकर ही प्राचीन आर्यों ने इसे अपना स्थान बनाया था। काशी के द्वार एवं वातायन पूर्व की ओर खुलकर सूर्य की रश्मियों का स्वागत करते हुए जैसे विश्व को यह संदेश दे रहे हों कि ज्ञान के लिये अपने अन्तर्द्वार खोल रखो। उसकी गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ संसार को भारतीय संस्कृति की उच्चता, महानता और आध्यात्मिकता का संदेश देती हैं। काशी धर्म, विद्या एवं संस्कृति का चिर-प्राचीन केन्द्र रही है।

पौराणिक काशीराज्य

काशी नगरी का पूर्व इतिहास इतना प्राचीन है कि उसकी खोज प्रायः असंभव है। यहाँ की भूमि में मनु की सीधी वंशपरम्परा की प्रतिष्ठा के प्रमाण मिलते हैं। शास्त्र-गाथाओं के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में जब सर्वत्र जलमात्र था, सागर की उत्ताल तरंगे हिलोरें ले रही थीं उस समय काशी का संस्थापन शिवजी के त्रिशूलपर स्थित भूखण्डपर हुआ। पुराणों में काशी नाम का सम्बन्ध काशीराज से होने का उल्लेख है। कहते हैं कि इन्हीं के वंश में आयुर्वेद के प्रवर्तक महाराज धन्वन्तरि का जन्म हुआ, जिन्होंने मानव जाति के रोग दोष निवारण के निमित्त अथक परिश्रम करके आयुर्वेद की सर्वप्रथम रचना की। राजा धन्वन्तरि का पौत्र दिवोदास बड़ा प्रतापी नरेश हुआ। उसकी ख्याति दूर-दूर तक व्याप्त थी। उसी के शासन-काल में प्रथम बार काशीराज और हैहय-वंशीय नरेश के साथ युद्ध हुआ। यह युद्ध कई पीढ़ियों तक चलता रहा। हैहय-

वंशीय राजाओं को यह युद्ध बहुत महँगा सिद्ध हुआ। अन्त में काशीराज्य के सम्मुख उसे मस्तक टेकने को विवश होना और महर्षि भृगुसे ब्राह्मण दीक्षा लेकर अपने राज्य को वापस जाना पड़ा। इस घटना से प्रकट है कि काशी उस समय भी हिन्दू धर्म का केन्द्र स्थल था और यहाँ महर्षि भृगु ऐसे महामुनि हिन्दू धर्म की दीक्षा देते थे।

काशीखंड से काशी नगरी के पूर्व इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। पौराणिक गाथाओं के रूप में आज हम चाहे उसे इतिहास के रूप में स्वीकार न करें, किन्तु इतना तो हमें स्वीकार ही करना पड़ेगा कि उस समय काशी विश्वविख्यात राज्य था और यहाँ धर्म एवं विद्या का इतना प्रचार था कि सभी प्रकार के ज्ञान के लिये संसार इस नगरी के प्रसाद के हेतु उत्सुक रहता था। काशीखण्ड में काशी राज्यके विस्तार का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में काशीराज ने पांडव पक्ष की ओर से भाग लिया था। धर्म की संस्थापना के लिये काशीराज्य सदैव तत्पर रहा। अतएव पांडवपक्ष की जय के लिये शस्त्र उठाना स्वाभाविक था। महाभारत के प्रायः एक शताब्दी पूर्व मगध का राजा जरासंध अधिक प्रतापी नरेश हुआ। उसने अपनी बलवत्ता से अपने साम्राज्य का बहुत विस्तार किया। काशीराज्य पर भी उसने आक्रमण किया और उसे विजित कर अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कर लिया था। किन्तु वह अधिक समय तक काशीराज्य को अपने अधीन नहीं रख सका। उसका पराभव होते ही काशीराज्य पुनः स्वतन्त्र हो गया और महाभारत में युधिष्ठिर के एक विशाल धर्मराज्य की स्थापना और अधर्म और अनीति के विनाश के स्वप्न को सत्य में परिणत करने के लिए अपना योग प्रदान किया था। महाभारत के बाद के इतिहास में भी काशीराज्य की महत्ता का उल्लेख बराबर मिलता है। काशीराज्य (ब्रह्मदत्त के समय में) का विस्तार पूर्व से पश्चिम तक प्रायः ढाई सौ मील कहा जाता है। काशीराज्य की राजधानी उस समय वाराणसी थी। कालान्तर में यह विस्तार घटता बढ़ता रहा।

जिस समय महात्मा बुद्ध ने भारत में बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया उस समय काशी हिन्दूधर्म का केन्द्र था। विद्या के क्षेत्र में तो उसकी ऐसी ख्याति

थी कि भारत का कोई भाग ऐसा नहीं था जहाँ काशी के शिक्षाप्राप्त विद्वान नहीं रहे हों। देशभरसे विद्यार्थी विद्या अध्ययन के लिए यहाँ आते थे और ज्ञानार्जन करके काशी की कीर्ति के लिये वे अपने-अपने स्थानों को वापस जाते थे। इस प्रकार काशी की सत्ता का निखिल भारतपर प्रभाव था। बौद्ध जातकों में तो कहा गया है कि काशी के विद्वान तक्षशिला के विश्वविद्यालय तक में थे। यही कारण था कि जब महात्मा बुद्ध ने बौद्धधर्म का प्रचार आरम्भ किया तो काशी को अपने उपदेश का केन्द्र बनाया। उन्होंने काशी आकर सारनाथ में 'अहिंसा परमो धर्मः' का उद्घोष किया। कालान्तर में जब बौद्धधर्म को राज्य से मान्यता प्राप्त हुई तो उसका प्रचार और भी बढ़ा, और उसके साथ-साथ सारनाथ का महत्व भी बढ़ता गया। इस प्रकार काशी के उत्तरी छोरपर एक और नगरी बन गयी। इससे काशी का महत्व द्विगुणित हो गया।

संस्कृति और विद्या का केन्द्र

वैदिक काल से ही काशी आर्यधर्म और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रही है। अथर्ववेद और ब्राह्मणग्रन्थों में काशी की धर्म प्रधानता का उल्लेख मिलता है। उपनिषद् काल में भी काशी की ज्ञान-गरिमा गायी गयी है। उस काल में उत्तरी भारत में दो स्थानों का धर्म के गढ़ के रूप में उल्लेख किया गया है। (१) काशी और (२) मिथिला। मिथिला के राजा जनक धर्म और दर्शनशास्त्र के उत्थान के लिये प्रसिद्ध थे, किन्तु काशी की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रही। उस समय में भी काशी विद्या का केन्द्र था और भारत के प्रत्येक भाग से लोग यहाँ आकर ज्ञानार्जन करते थे। देश-विदेश के विद्वानों की दृष्टि काशी की ओर लगी रहती थी और यहाँ के विद्वान भारतीय धर्म और संस्कृति की अखण्ड ज्योति को समस्त संसार में फैलाने के प्रयास में सदैव ही प्रयत्नशील रहे। बौद्धकाल में तक्षशिला को विद्या का केन्द्र होने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। किन्तु फिर भी काशी ज्ञानार्जन का केन्द्र बनी रही। वास्तव में काशी आर्यधर्म के आधिपत्य का केन्द्र रही है। वैदिक काल से लेकर अब तक हिन्दूधर्म और संस्कृति के विकास में उसने महत्वपूर्ण योग दिया है।

काशी की यह विशेषता रही है कि यहाँ देश के सभी भागों से लोग बराबर आते रहे हैं। यात्रियों के इस आगमन के परिणामस्वरूप उसकी संस्कृति में सम्पूर्ण भारत की संस्कृति के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति की अजस्र सुरसरिता जो यहाँ से प्रवाहित हुई उसने इस देश को ही नहीं वरन् समस्त संसार को एक नई दिशा प्रदान की। काशी की संस्कृति बराबर विकासमयी रही है। उसमें समय की माँग को पूरा करने के तत्त्व प्रारम्भ से ही विद्यमान थे। यही कारण है कि काशी की संस्कृति में आर्य-धर्म की सहिष्णुता और उदारता के दर्शन होते हैं। विदेशी आक्रमणों के होते हुए भी हमारी संस्कृति का मूलाधार ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रहा। युगों के इतिहास में कितनी ही संस्कृतियाँ बनीं बिगड़ीं किन्तु भारतीय संस्कृति का अमरत्व चिरन्तन शक्ति प्रदान करता रहा। भारतीय संस्कृति की मूलाधार सहिष्णुता ही उसकी जीवनी शक्ति है। हूण, कुशाण आदि कितने ही विदेशी जातियों के आक्रमण हुए, काशीराज्य पर भी उनका प्रभुत्व रहा, किन्तु वे यहाँ की संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके।

विचारों की उदारता

राजनीतिक क्रान्तियों के काल में भी काशी हिन्दूसंस्कृति और धर्म को नयी और उदार विचारधारा से प्रभावित करती रही। महात्मा बुद्ध ने अपना धर्मप्रचार यहीं से प्रारम्भ किया। शंकराचार्य ने हिन्दूधर्म की यहीं से पुनः प्रतिष्ठा की। विगत एक हजार वर्षों में भी काशी ने भक्तिमार्ग की प्रतिष्ठा में विशेष योग दिया। भक्तिमार्ग के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द ने काशी में ही शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ की उदार विचारधारा में पलकर ही वे "जात-पाँत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई" के सिद्धान्त की कल्पना कर सके। उन्होंने समस्त मानव जाति को एक माना। ऊँच-नीच का भेद उनके सम्मुख नहीं था। सभी मनुष्य हैं और सभी को ईश्वर के निकट जाने का अधिकार है—इस प्रकार की उदार विचारधारा केवल काशी के ही अंचल में उत्पन्न हो सकती थी। काशी में उनके शिष्यों में छोटे बड़े अपढ़ और विद्वान सभी थे। स्वामी रामानन्द के स्वर में काशी के सांस्कृतिक समन्वय और सर्वात्मा सर्वभूतेषु का
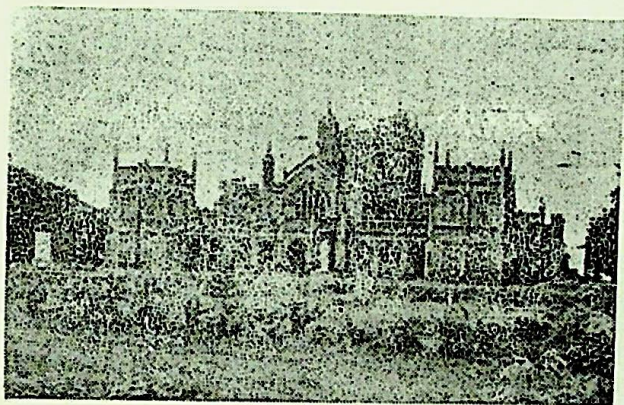
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
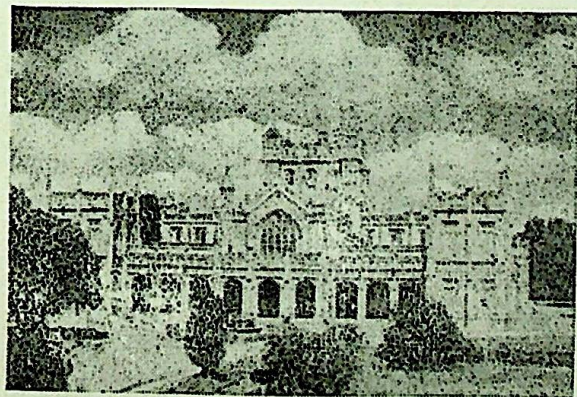
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
का एक अन्य दृश्य

सन्देश समानता की स्वरगंगा ने सम्पूर्ण भारत की विचारधारा को आन्दोलित कर दिया।

उनके शिष्य कबीर ने उनकी ज्योति को और अधिक बल दिया। एक ही ईश्वर सभी प्राणियों में बसता है, सभी तो उसी के अंश हैं, फिर मनुष्य-मनुष्य में भेद कैसा। इस भेद के कारण ही अनेक विनाश इस धरती को देखने पड़े। धर्म की रूढ़िवादी बातों का उन्होंने खण्डन किया और सबके लिये एक सरल सुगम भक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया। कबीर के बाद रैदास, गुरु नानक आदि द्वारा काशी की उसी सहिष्णु विचारधारा को बल मिला। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक भक्तिमार्ग की यह धारा भारत में प्रवाहित हो गयी। चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में भक्ति की सुरसरिताको प्रवाहित कर सम्पूर्ण बंगाल को उसमें परिप्लावित कर दिया। चैतन्य महाप्रभु की भी दृष्टि काशी की ओर लगी रही। उन्होंने यहाँ आकर अपना एक मठ स्थापित किया।

वैष्णव मत के प्रवर्तक स्वामी वल्लभाचार्य ने काशी में ही शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने पहले अपने विचारधारा के प्रचार के लिये मथुरा को अपना स्थान चुना था, किन्तु बाद में वे काशी आकर रहने लगे। काशी की यह विशेषता रही है कि भारतीय संस्कृति के मूलाधार गुणों का यहाँ सदैव ही प्राधान्य रहा है। यही कारण है कि यहाँ से ऐसी अनेक विचारधाराओं को प्रश्रय मिला जो धार्मिक सहिष्णुता, समता और ऐक्यपर आधारित थी।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास को भी रामभक्ति के प्रचार के लिये काशी को अपना स्थान चुनना पड़ा। उन्होंने रामचरित मानस के रूप में भारत को उसके आदर्शों का ज्ञान कराया, संस्कृति की रक्षा के लिये उसके मूलगुणों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। भारतीय संस्कृति के इतिहास में पन्द्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी विशेष महत्त्व रखती है। इन शताब्दियों में भारतीय संस्कृति के मूलतत्व अधिक मुखरित हुए। भारतीय संस्कृति की जड़ें जम गयीं।

काशी ने भारतीय संस्कृति को अपने में संजोये रखने का ही काम नहीं किया, बल्कि उसके अंचल से सदैव ही नई विचारधारा प्रवाहित होती रही। सभी धर्मों के प्रति उदारता, समता, समदर्शिता, सहिष्णुता, काशी के कण-कण में विद्यमान रही है। चिरकाल से काशी ज्ञान का पीठ रहा है। उसके ज्ञान की ज्योति ने भारत के मार्ग को समय-समय पर प्रशस्त किया है। उसने सभी प्रकार के विचारधाराओं का स्वागत किया और उन्हें बल प्रदान किया।

विद्या का केन्द्र

विद्या के क्षेत्र में भी काशी की देन अद्वितीय रही है। चिरकाल से यह स्थान विद्या का केन्द्र रहा है। ऋषि-मुनियों की इस तपोभूमि में आज भी गुरु परम्परा कायम है। यहां दिग्गज पंडितों का सदैव ही बाहुल्य रहा है, जो ज्ञानार्जन के इच्छुक विद्यार्थियों को विद्यादान करते आये हैं। हर विद्वान के घर कुछ विद्यार्थी आ जाते थे और वह उन्हें शिष्य के रूप में ग्रहण करते थे। न तो कोई निर्धारित पाठ्यक्रम होता था और न कोई परीक्षा। गुरु अपना सम्पूर्ण ज्ञान विद्यार्थियों को देकर अपने यश का विस्तार करने के लिये सदैव तत्पर रहता और विद्यार्थी भी, जो दूर-दूर से आते थे, यथाशीघ्र समस्त ज्ञानार्जन करके अपने स्थान को वापस जाने के लिये इच्छुक रहते थे।

भारत का कोई भी क्षेत्र ऐसा न था जहाँ काशी के विद्वान न पाये जाते रहे हों। काशी को विद्या और ज्ञान की पीठिका के रूप में इतनी ख्याति प्राप्त थी कि कोई भी विद्वान जब तक काशी से शिक्षा न प्राप्त कर लेता, अपने ज्ञान को अधूरा ही समझता था। बौद्ध और मुसलिम काल में भी काशी की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रही। बौद्धकाल में काशी के उपांचल में सारनाथ बौद्धों का विशाल विद्यापीठ बन गया था। उस समय भी काशी का महत्व बढ़ा ही। हजारों वर्षों तक काशी के विद्वान विद्या एवं दर्शन का अध्यापन एवं प्रचार करते रहे। तेरहवीं शताब्दी में एक बार ऐसा अवसर आया जब कि काशी के विद्वानों को दक्षिण की ओर भाग जाना पड़ा। किन्तु काशी की यह विद्वन्मंडली दक्षिण में कोई ऐसा केन्द्र नहीं स्थापित कर सकी और कुछ काल के बाद

फिर काशी लौट आयी और इस प्रकार काशी की प्रतिष्ठा पूर्ववत् अक्षुण्ण बनी रही।

हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी की विद्यादान की परम्परा से ही प्रेरित होकर पंडित मदनमोहन मालवीय ने सन् १९१५ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव डाली। आज यह विश्वविद्यालय भारत के श्रेष्ठतम विश्वविद्यालयों में गिना जाता है। किन्तु आज भी काशी में अध्यापन के गुरु प्रणाली का लोप नहीं हुआ है।

संस्कृति और विद्या के साथ-साथ काशी ने विभिन्न ज्ञान-विज्ञान के विकास में भी योग दिया है। ज्योतिष विद्या के विकास में काशी का योग सराहनीय रहा है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र काशी में ही जन्म लेकर यहां ही फला-फूला। कला के क्षेत्रों में भी काशी ने बड़ी उन्नति की।

वास्तु-कला

अनेक संस्कृतग्रन्थों की रचना काशी में हुई। वास्तु-कला की दृष्टि से काशी की इमारतें विशेष उल्लेखनीय हैं। काशी में भारतीय वास्तु-कला के विकास का इतिहास देखा जा सकता है। यद्यपि राजनीतिक उथलपुथल में काशी की इमारतों को बहुत अधिक क्षति उठानी पड़ी है, फिर भी हमें भारतीय वास्तुकला के विभिन्न काल के नमूने यहां देखने को मिल सकते हैं।

[सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित पतितपावनी काशी से संकलित]

काशिराज और राजाभोज

श्री विश्वनाथ मुखर्जी सिद्ध गीर बाग, बनारस

प्राचीन काल में काशी राज्य हैहय वंश वालों के अधिकार में था। महाराज दिवोदास के शासन-काल में हैहय वंश वालों ने उनपर आक्रमण किया था। फलस्वरूप उन्हें अपनी राजधानी वाराणसी से हटा कर गोमती नदी के मुहाने के पास ले जानी पड़ी—

हैहय वंश वालों की उत्पत्ति का संबंध हमारे पौराणिक महापुरुषों से है; लेकिन आज पुराण और उपनिषद् की सारी बातें सर्वसाधारण के लिए विश्वसनीय नहीं हैं।

महाभारत और अग्निपुराण के निर्माण काल में हैहय वंश वालों को शौण्डिक (कलाल) कहा जाता था। ये लोग शैव मतानुयायी थे। पाशुपत पंथी होने के कारण शराब अधिक पीते थे और घरों में बनाते थे। इसलिए इन्हें कल्यचुरि (कलचुरी) कहा जाने लगा। संस्कृत में 'कल्य' को शराब तथा 'चुरी' को चुआने वाला कहा जाता है। राजघराने वाले श्रेष्ठि सामंतगण चुआते नहीं थे, इसलिए वे कलचरी बन गए और इनके पेय पदार्थ को बनाने वाले 'कल्यपाल' कहलाने लगे।

कलचुरियों का राज्यविस्तार

कलचुरि हैहय वंश के क्षत्रिय थे। प्राचीन काल में इनका राज्य नर्मदा तक फैला था। इनकी राजधानी माहिष्मती (मान्धाता) थी। इनका निवास स्थान चेदी में होने के कारण इन्हें चेदी भी कहा जाता था। इस वंश (चेदी

का प्रतिष्ठाता कोकल्ल था। उसने उहाल (जबलपुर के आसपास के क्षेत्र) में राज्य स्थापित किया था। इसी वंश में गांगेय नामक महा पराक्रमी राजा सन् १०१० ई० में हुआ था। महोवा के एक लेख से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में उसने कांगड़ा (कोर) तक धावा किया और प्रयाग-वाराणसी पर अधिकार कर लिया था।

अल बैहाकी अपने इतिहास में लिखता है—"मसूद के पंजाब के शासक नियाल्तगीन १०३३ ई० में गंगा पार कर किनारे किनारे बढ़ता गया। उसने अपनी सेना अचानक बनारस के सामने लाकर खड़ी कर दी। यह नगर गंग के राज्य में था। उसका क्षेत्रफल दो वर्ग फरसाख (५ मील) था और वहाँ पानी की कमी नहीं थी। गंग के डर से सेना नगर में प्रातःकाल से मध्याह्न काल तक डटी रही। सैनिकों ने गंधियों, जौहरियों और जरदोजी के काम करने वालों की दूकानें लूट लीं और सोना, चाँदी जवाहिरात तथा सुगंधित द्रव्यों की भारी लूट लेकर सकुशल लौट आए।"

काशी कलचुरियों के अधीन

उपर्युक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि उन दिनों काशी नगरी कल्चुरियों के अधीन थी। इस वंश का सारे भारत में दबदबा था। जब गांगेय की सेना नियाल्तगीन के सैनिकों से युद्ध करने नहीं आई तब उसके सैनिकों ने काशी को लूटा। कहा जाता है—कन्नौज तथा धार के राजा भोज से वह हार गया था। संभव है इससे राज्य व्यवस्था ढीली पड़ गई हो। उसी समय से "कहाँ राजा भोज कहाँ गांगू तेली" की कहावत प्रचलित हुई है। धार के राजा भोज से वह बुरी तरह पराजित हो गया था। फलस्वरूप अपने जीवन के अन्तिम काल में उसने अपनी राजधानी प्रयाग में बनाई। वहीं उसकी मृत्यु भी हो गई।

चेदी के हैहय वंश वाले उत्तम क्षत्रिय माने जाते थे। इसीलिए मेवाड़ के गहलौत और मारवाड़ के परमारों से इनका विवाह संबंध होता था। पृथ्वीराज चौहान की माता सोमेश्वरी रानी कल्चुरि राजकन्या थीं। आज भी मेवाड़ में

राजपूतों की एक शाखा अपने को हैहय वंशी क्षत्रिय कहती है। गांगेय की बुआ की शादी तैलंग नगरी के राजा के साथ हुई थी। यही कारण है कि "गांगू तेली" शब्द का प्रयोग किया गया था।

गांगेय के बाद उसका उत्तराधिकारी लक्ष्मी कर्ण अथवा कर्ण राजा हुआ। वह इस कुल का सर्व शक्तिमान राजा था। उसने सन् १०४१ ई० से १०७२ ई० तक राज्य किया। इन ३१ वर्षों में सारे भारत में विख्यात हो गया। उत्तरी भारत में तो वह एक बार काल की तरह फिर गया था। पालों के साथ उसका संघर्ष हुआ। गौड़, हूण, चोड़ और कुंग आदि राजाओं को पराजित किया। इसने अपने नाम पर 'कर्णावती' नामक नगरी बसायी। जनरल कनिंघम के मतानुसार इस नगरी का भग्नावशेष मध्यप्रदेश के कारी तराई के पास है। काशी का 'कर्ण मेरु' नामक विशाल शिव मंदिर इसने बनवाया था। भेड़ाघाट से प्राप्त एक शिलालेख के बारहवें श्लोक में उसकी वीरता का वर्णन है:—

कर्णदेव के विक्रम और प्रताप के सामने पाण्ड्य देश के राजाओं ने उग्रता छोड़ दी, मुगलों ने गर्व छोड़ दिया, कुंगों ने सीधी चाल ग्रहण की, बंग, कलिंग देश वाले काँप गये, कीर वाले पिंजरे के तोते की तरह चुपचाप बैठ गये और हूणों ने हर्ष मनाना छोड़ दिया।

कर्ण वेल के लेख में लिखा है—चोड़, कुंग, हूण, गौड, गुर्ज्जर और कीर के राजा उसकी सेवा में रहते थे।

वाराणसी कर्ण की राजधानी

राजा कर्ण की राजधानी वाराणसी नगरी थी। वह स्वयं विद्वान था तथा विद्वानों का आदर करता था। उसके दरबार में विद्यापति आदि अनेक महाकवि रहते थे। कहा जाता है कि राजा भोज द्वारा अपने पिता के किये गये अपमान को वह भूला नहीं था। वह मन ही मन इसका प्रतिशोध लेने की कल्पना कर

चुका था और उचित अवसर की प्रतीक्षा करता रहा, ताकि "कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगू तेली" को कहावत मिटा सके।

जब उसने एक-एक कर १३६ राजाओं को अपने अधीन कर लिया तब एक दिन उसने राजा भोज के यहाँ दूत द्वारा यह सन्देशा भिजवाया कि आपके नगर में आपके बनाये हुए १०४ महल हैं तथा इतने ही आपके गीत प्रबन्ध हैं और इतनी ही उपाधि। इसलिए या तो युद्ध में, शास्त्रार्थ में अथवा दान में मुझे जीत कर १०५ वीं उपाधि ग्रहण करें और नहीं तो मैं आपको जीत कर १३७ राजाओं का अधिपति बनूंगा।

जिस समय यह प्रशस्ति राजा भोज के सम्मुख पेश हुई, उस समय बलवान काशी नरेश का सन्देश पढ़ कर भोज का मुख म्लान हो गया। अन्त में भोज के काफी अनुनय-विनय करनेपर यह तय हुआ कि दोनों ही नरेश अपनी-अपनी राजधानी में एक ही समय में एक तरह का महल बनवायें। जिसका पहले बन जाय, उसे विजयी माना जाय और दूसरा उसके अधीन हो जाय। इस निश्चय के अनुसार राजा भोज ने उज्जैन में और कर्ण ने वाराणसी में महल बनवाना शुरू किया। राजा कर्ण का महल पहले बन गया और उज्जैन-नरेश पिछड़ गये। उस समय कर्ण ने शर्त के अनुसार उन्हें अपने अधीनस्थ होने को कहा। लेकिन भोज को यह मान्य नहीं हुआ। उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी। फलस्वरूप कर्ण ने गुजरात के राज्य का सहयोग लेकर धार-राज्य पर चढ़ाई की। लेकिन जब वह उज्जैन की सीमा के समीप पहुँचा, उस समय उसे यह पता चला कि अत्यधिक ज्वर के कारण भोज की मृत्यु हो गयी है। इस समाचार को सुनते ही उसने तेजी से नगर में प्रवेश कर महल के सारे खजाने को लूट लिया।

कर्ण का सिर काट लाने का आदेश

गुजरात के राजा को इस लूट के माल का उचित हिस्सा न देने के कारण गुजरात के राजा ने अपने सांधिविग्रहिक मंत्री डामर को कर्ण का सिर काट

लाने का आदेश दिया। किसी प्रकार वह डामर कर्ण के खेमे के समीप पहुँचा। राजा कर्ण को इसका तुरन्त आभास लग गया। उसने डामर के सामने हीरा जवाहिरातों से टंकी हुई एक मूर्ति, दूसरी ओर अपने को रख दिया और कहा- इसमें से जो इच्छा हो चुन लो। डामर की आँखों में तृष्णा बढ़ गयी और वह मूर्ति उठा कर चला गया।

प्रबोध चन्द्रिका, नागपुर से मिले परमार राजा लक्ष्मण देव के लेख तथा उदयपुर (ग्वालियर) के लेख से उपर्युक्त घटना की सत्यता प्रमाणित होती है।

विभिन्न सम्प्रदायों का पीठ काशी

साधारण रूप से यह कह पाना कठिन है कि भगवान विश्वनाथ की नगरी काशीपुरी को कब से देश की सांस्कृतिक राजधानी होने का गौरव प्राप्त है, परन्तु जहाँ तक इतिहास साक्षी देता है उससे जाना जाता है कि उपनिषद् काल में ही काशी को यह प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी, चार तीर्थंकरों की जन्मभूमि के कारण और भगवान बुद्ध द्वारा धर्म प्रवर्तन होने के कारण इन दोनों विख्यात सम्प्रदायों का यहाँ सदा से केन्द्र बना हुआ है, भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के धर्म प्रभाव के कारण सम्भवतः उस समय के धर्माचार्यों के लिये यह आवश्यक हो गया था कि अपने-अपने धर्म की देशना के लिये काशी आवें, यहाँ आकर यहाँ के लोगों से धर्म-चर्चा करके अपने विचारों को पक्का करें। यही कारण है कि सुदूर दक्षिण में भी उत्पन्न भक्ति के विस्तारक आचार्यों ने काशी को अपनी क्रीडा-भूमि बनाया था।

शंकराचार्य को वर्तमान सनातनधर्म का एकमात्र उद्धारक कहना चाहिये। इनके काशी आगमन की अनेक कथाएँ आज भी काशी की गलियों में गूँज रही हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र उन्होंने यहीं लिखा था। उनके द्वारा स्थापित चार प्रधान गद्दियों के प्रतिनिधियों ने काशी में अपना कुछ-कुछ स्मारक बना रखा है। इन्हीं में से अब एक पाँचवीं शाखा फूट रही है। जिसके लिये एक नया मठ अवधगर्वी मुहल्ले में बना है और श्रीकृष्ण-बोधाश्रमजी उसके आचार्य बनाये गये हैं। पर वह अभी विवाद की बात है।

शंकराचार्य के मठों और पीठों के बाद सबसे प्रबल सम्प्रदाय नाथों का उत्तर भारत में था। उत्तर भारत का प्रसिद्ध नगर गोरखपुर इन्हीं की यादगार है। काशी में प्रसिद्ध स्थान गोरखटीला इस सम्प्रदाय का एक केन्द्र है। आजकल इस स्थान की देख-रेख के लिये राजस्थान सरकार रुपया देती है जो जोधपुर स्टेट की मद से आता है। जोधपुर के राजा लोगनाथ सम्प्रदाय के भक्त होते

आये हैं। और नेपाल के बाद सबसे अधिक साहित्यिक सामग्री उन्हीं के भंडार में सुरक्षित है। इस गोरखटीले की एक कहानी यह भी है कि औरङ्गजेब जब काशी में आया था तो उसने सन्तों की करामात देखनी चाही थी, सो यहाँ के महात्मा ने अपने चमत्कार से उसे अभिभूत कर दिया था। यह टीला और उसकी इमारत भी उसी की बनवाई हुई बताई जाती है। इतना ही नहीं, लक्ष्मी-कुंड पर बना हुआ अपार नाथ का टेकरा भी इसी घटना का स्मारक है।

ऊपर जिन चार महापुरुषों—रामानुज, निम्बार्क, माधवाचार्य और वल्लभाचार्य—की चर्चा आयी है उनमें से रामानुजियों के कई मठ काशी में है। और उनकी सेवा-पूजा भी सम्प्रदाय के नियमों से ही होती है।

माध्व-सम्प्रदाय के आचार्यों ने गवर्नमेंण्ट कालेज में माध्व-वेदान्त का अध्ययन करने के लिये नरसिंहाचार्य बरखेडकर नाम के विद्वान की नियुक्ति कराकर एक गद्दी (चेयर) स्थापित कराई थी। पर अब वह नहीं है। निम्बार्क सम्प्रदाय का एक मन्दिर निम्बार्ककोट नाम से चौखम्भा में बना हुआ है। वल्लभाचार्य जी के अनुयायियों द्वारा बनवाया हुआ प्रसिद्ध गोपाल मन्दिर भी चौखम्भा में है। गोलोकवासी भारतेन्दुजी के पिता ने इस मन्दिर के लिये बहुत-सी चल और अचल सम्पत्ति दान में दी है। यहाँ के आचार्य अपने-अपने समय के अच्छे-अच्छे विद्वान रहे हैं। उन्हीं में से एक श्यामा बेटी जी थीं। जो स्वयं तो अच्छी कविता करती ही थीं, अनेक कवियों की आश्रयदात्री भी थीं।

शाक्त-परम्पराओं और बौद्धों के बज्रयान से अनुप्राणित अनेक प्रकार के मन्त्र-जन्त्र, टोना-टोटका आदि का भी काशी में अधिक प्रचलन रहा है। वामाचार एवं कौलाचार के साधक लोग काशी को सिद्धपीठ मान कर यहाँ निवास कर साधना करते रहे हैं। इन लोगों की क्रियाएँ और स्वरूप इतने गुह्य होते हैं कि जनसाधारण को उनकी जानकारी होना प्रायः दुर्लभ है। तो भी अनेक भक्तजनों के मुख से सुना जाता है कि लक्ष्मीकुण्डपर पोखरे के सामने वाले मठ में इस प्रकार की साधनाएँ होती थीं। चौसट्टी घाट के आस-पास भी दो एक स्थान बताये जाते हैं। कभी-कभी साधकों के दर्शन भी हो जाते हैं।

साधकों की सिद्धिदात्री नवदुर्गाओं के स्थानों में से दुर्गाकुण्डपर दुर्गाजी, संकटा घाटपर संकटाजी, शीतलाजी, अन्नपूर्णाजी, और काली मन्दिर बहुत ही विख्यात है, और निष्ठा के अनुसार प्रभावकारी भी है।

काशी में स्वामी संन्यासियों का राज्य ही समझा जाता है। इसीलिये किसी के मनचले ने यह कहा है कि 'रांड़ साँड़ सीढ़ी सन्यासी, इनसे बचे सो सेवे काशी।' सन्यासियों से बचकर ही काशी में रहा जा सकता है। सो इन दशनामियों के, जिनमें गिरि, पुरी, भारती, वन, अरण्य सागर, आनन्द, आश्रम आदि अखाड़े हैं। उन सभी के मठ यहाँ थे। इन अखाड़ों में से कुछ तो अभी भी वर्तमान है। पर कुछ को अपना अखाड़ा चला सकने में आर्थिक कठिनाइयों के कारण दूसरों के साथ शामिल हो जाना पड़ा है। पहले प्रत्येक कुम्भपर सभी अखाड़े अलग अलग निकला करते थे। परन्तु अब बड़े-बड़े अखाड़े ही निकलते हैं, और गत प्रयाग के कुम्भपर नरसंहार के कारण जो मुकदमा चला उसके परिणाम ने जनता के मन में उनके प्रति और भी आस्था कम कर दी है।

उत्तर भारत में जब नाथों का जोर बढ़ रहा था उसी समय दक्षिण कर्नाटक में एक बसव नामक व्यक्ति ने एक नये सम्प्रदाय को जन्म दिया। यह सम्प्रदाय आगे चलकर लिंगायत सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी गद्दी काशी में बहुत पहले से स्थापित है। इसके आचार्य ने एक बैंक खोला था। उस बैंक के फेल होने पर एक बड़ा मुकदमा चला, उसमें मठ की ओर से अनेक कागजात पेश किये गये, जिनमें कई मुसल्मान बादशाहों की संनदें भी थीं। और कहा गया कि जयनन्द नाम के किसी काशीराजा का एक दानपत्र भी था जो काल-क्रम से जीर्ण हो गया। पर काशी के ज्ञात इतिहास में जयनन्द राजा का कोई पता नहीं चलता। यहाँ के मठ का नाम विश्वाराध्य मठ है। इस मठ में कोटिशिव लिंगों की स्थापना है। काशी की आम जनता तो कम परन्तु आंध्र कर्नाटक आदि के अनेक यात्री यहाँ आकर दर्शन-पुण्य लाभ करते हैं। इस मठ का अपना एक पुस्तकालय और साम्प्रदायिक साहित्य भी भरापूरा है। इसी जंगमबाड़ी मुहल्ले के पास जंगमों का भी एक मठ जयनारायण स्कूल के पास बना हुआ है। गुरुनानक जी के काशी आगमन का प्रमाण तो नहीं मिलता परन्तु उनके बाद के

गुरुओं का काशी में आगमन सुना गया है। नगर में तीन चार बड़ी संगते हैं, जिनमें सम्प्रदायानुरूप वाणी का पाठ एवं ज्ञानचर्चा होती है। आसभैरव नामक मुहल्ले में स्वामी गोविन्दानन्द जी की बनवाई हुई पाठशाला इस समय भी अच्छी सेवा कर रही है। इसी की बगल में सहजादे का मठ है, जो बाबा सुमेरसिंह साहबजादे का था। ये बाबाजी भारतेन्दुजी के मित्र और स्वयं अच्छे कवि थे। इन लोगों की परम्परा पटना के गुरुद्वारे से चलती है। कहा जाता है कि इन्हें साहबजादे का खिताब मिला हुआ था। रामनगर में भी इस सम्प्रदाय का एक मठ है जिसमें रखा हुआ गुरु ग्रन्थ साहब काफी आदर से देखा जाता है। कमच्छा मुहल्ले में बना हुआ मठाकार गुरु का बाग हाल की रचना है।

इसी पीढ़ी में दक्षिण से आयी हुई भक्ति परम्परा के उन्नायक रामानन्दजी का मठ भी पंचगंगा घाटपर है। जो बहुत अच्छी हालत में नहीं है। पर अपना अस्तित्व बनाये हुए है। पंचगंगा घाटपर माधवदास के धरहरा के नीचे एक मढ़ी है। जो रामनन्दकी मढ़ी के नाम से मशहूर है और कहा जाता है कि रामानन्दजी से और कबीर से इसी स्थानपर साक्षात्कार हुआ था। इस मढ़ी में एक मुख दीवार में बना हुआ है जो काफी पुराना बताया जाता है। गंगा का पानी बढ़ कर जब इसे छू लेता है तभी इंद्रदवन का नहान लगता है। रामानन्द सम्प्रदाय के पंडित राजस्वामी भगवताचार्यजी के प्रयत्न से संकुधारापर एक रामानन्द विद्यालय की भी स्थापना हुई है। रामानन्दजी की शिष्य शाखा अपने समय की एक क्रान्तिकारी घटना थी। इसके साढ़े बारह शिष्य कबीर, रैदास, सेन, पीपा आदि इतने महिमा वाले और सच्चे साधु थे कि उन सबके नामपर एक एक मत चल पड़ा। वे मत आज भी वर्तमान हैं। कहा जाता है कि कबीर लहरतारा तालाबपर पाये गये थे। यहाँ पर शाहपुर धनावा जिला गोंडा के ताल्लुकेदार ठाकुर नागेश्वरबख्श द्वारा एक मठ बनवाया गया है। और नगर के प्रसिद्ध कबीरचौरा नामक मुहल्ले में एक कबीरमठ है जो काफी बड़ा और पुराना है। यहां भी कबीर साहब का चित्रादि वर्तमान है। उसी मठ से लगा हुआ एक टीला है जिसे नीरु टीला कहा जाता है। वहाँ दो कबरें बनी हुई हैं। कबीरमठ के महात्मागण उन्हें नीरु और उनकी पत्नी नीमा की कबरें बतलाते

हैं। परन्तु उनकी ठीक छानबीन करने का प्रमाण इस स्थानपर उपलब्ध नहीं है। कबीर के चार प्रधान शिष्यों, जागू, भागू, सूरतगोपाल और धर्मदास के स्थान काशी में थे। यह कबीरचौरे का मठ सूरतगोपाल का, शिवपुर का मठ जागू की गद्दी का तथा लहरतारा के दूसरे छोरपर तथा पियरी महल्ले में धर्मदास की शाखा के थे। नगर के पास ही भगत भगवान या भंगता, जिसे धनवती भी कहा जाता है, के भी मठ थे। पर जैसे बड़े वृक्ष के नीचे छोटे-छोटे वृक्ष पनप नहीं पाते उसी भाँति ये मठ भी नाम मात्र के रहे। प्रभाव व महिमा की दृष्टि से कबीरचौरे के मठ का ही बखान होता रहा।

ऐसी प्रसिद्धि है कि रैदास जी पंचगंगाघाट के आसपास रहते थे। पर वहाँ इस समय ऐसा कोई स्थान नहीं है जिससे यह पता चल सके कि वहाँ कहीं वे रहते थे। तो भी नगर में इंगलिशियालाइन के चर्च के पास एक मठ को इनका स्थान माना जाता है। और महामाया ट्रस्ट के पास इनके अनुयायियों द्वारा बनवाया हुआ एक स्थान वर्तमान है। सेना और पीपा के स्थानों का कोई पता नहीं चलता। उनके अनुयायी नगर में यत्र तत्र दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु उनका कोई मठ शायद नगर में नहीं बन पाया। नानकसाही सम्प्रदाय के प्रवर्तक दादू दयाल स्वयं तो काशी नहीं आये थे, पर उनके प्रमुख शिष्य महात्मा सुन्दर दास जी सं० १६६३ वा ६४ में आये थे, और विद्याध्ययन करने के निमित्त २० वर्ष तक रहे भी थे। वे यहाँ प्रायः अकिंचन अवस्था में रहते थे, और मधुकरी करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे। पीछे उनके शिष्य सुरेका ने एक मठ बनवाया जो अब भी अस्सी मुहल्ले में दादूमठ के नामसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसके निर्वाह के लिये १७ रुपये प्रतिमाह कलकत्ते की कोठी से आता था जो स्थान के अव्यवस्थित होनेपर इसके ट्रस्टियों के द्वारा नराने भेज दिया गया। इस मठ में एक चित्र रखा है जिसमें सामने दादूदयालजी बैठे हुए हैं और सुन्दरदासजी उनके पीछे चवर लिये खड़े हैं। सामने बादशाह अकबर और महाराज टीकाजी बैठे हुए हैं। यह चित्र लगभग १५० वर्ष पुराना होगा। इसमें इन दोनों महात्माओं के रूपों की झांकी मिलती है।

वैष्णव भक्तों के सुमेर गोस्वामीजी और उनके स्थानों की चर्चा तो अन्यत्र

२

हो ही चुकी है। उन्हीं के समकालीन अन्य सन्तोंने भी, जिन्होंने किसी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया है, प्रायः उन सब का कोई न कोई स्थान काशी में अवश्य है। अघोर सम्प्रदाय को दो भागों में विभक्त करने वाले बाबा कीनाराम जी बनारस जिले के रामगढ़ नामक गाँव के रहने वाले और शिवनारायणजीके शिष्य थे। पहले पहल अपनी यात्रासे लौटने पर लोलार्ककुंड पर अपना डेरा डाला था, और कालू नामके महात्मा के सत्संग से प्रभावित होकर जब अघोरपंथ की वामपरम्परा अपनाई तो उन्होंने कृमिकुंड पर अपनी मढ़ी बनवाई। भादो मास के शुक्लपक्ष को अब भी अच्छा मेला लगता है। वहाँ उनकी सातों गद्दियों के महात्मा लोग जुटते हैं, और दो दिनों तक काफी चहल-पहल रहती है। उस स्थान में कीनारामजी का एक बड़ा सा चित्र सुरक्षित है। सेनपुरा नामक मुहल्ले में उनके अनुयायियों की अच्छी संख्या है। और उन लोगों द्वारा इस स्थान की देखभाल आदि यथासमय होती रहती है।

इस मठ के निकट ही तुलसी मन्दिर है। कहा जाता है कि उसमें गोस्वामीजी की कुछ वस्तुएँ हैं। डाक्टर ए० जी० ग्रीयर्सन जब रामायण की खोज में काशी आये थे तो इसी स्थान के प्रबन्धक श्री रघुबीर तिवारी ने एक प्राचीन प्रति उन्हें दी थी और वह पंचनामा जो गोस्वामीजी के हाथ का लिखा हुआ है (जो अब महाराज बनारस के संग्रह की शोभा बढ़ा रहा है) इसी मुहल्ले में प्राप्त हुआ था।

इसी स्थान के बगल में एक गेरुए रङ्ग से पुता हुआ गणेशमठ है, जिसे पेशवा बाजीराव द्वितीय के भाई चिम्माजी अप्पा ने बनवाया था। जिस समय वे फिरंगियों की आज्ञा से यहाँ काशीवास करने आये थे। मन्दिर की बनावट एकदम महाराष्ट्रीय पद्धति की है। इसीमें पेशवा गणेश उत्सव मनाया करते थे। बीच-बीच में गणेशजी की प्रतिमा रखी जाती थी। उनके सामने कीर्तन आदि होता था। ऊपरी बारजेपर बैठकर रनिवास के लोग भी उत्सव देखते थे। इसी के एक किनारे वह स्थान भी है जिसमें मोरो रहा करते थे। वे चिम्माजी के पार्षद थे। उन्हीं के यहाँ झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ था। इसगणेशमठ की दशा अब बहुत ही शोचनीय है। काल के थपेड़े खाते-खाते

जर्जर हो चुका है। कुछ दिन पहले काशीराज की ओर से कुछ मरम्मत आदि हुई थी। परन्तु इस समय वह फिर सहायता की बाट ज़ोह रहा है।

शिवनारायण स्वामी क्षत्रीवंशी थे। उनका जन्म सन् १७१० ई० में चन्द्रवार (अब बलिया जिले का एक गाँव) में हुआ था। उन्होंने सन्त दुखहरण से दीक्षा लेकर पंथ चलाया जो शिवनारायणी पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी कथा है कि बाबा कीनाराम इन्हीं के शिष्य थे। जब इनकी स्त्री का देहान्त हो गया और उन्होंने अपना दूसरा विवाह करना चाहा तो कीनाराम ने मना किया। तो भी वे न माने, तब कीनाराम ने कहा कि अगर आप दूसरा विवाह करेंगे तो मैं भी दूसरा गुरु कर लूँगा। निदान दोनों ने अपने-अपने मनकी की। शिवनारायण ने दूसरा विवाह कर लिया और कीनाराम ने दूसरा गुरु। इन शिवनारायणजी का एक स्थान हाल में ही बना है। इसी काल के प्रमुख सन्त भास्करानन्द का, जो पहुँचे हुए सन्त हो चुके हैं, दुर्गाकुण्ड के ऊपर संगमरमर निर्मित समाधि है। यह स्वामीजी मनमौजी थे। इन्हीं के नाम पर बना हुआ एक तालाब भी है जहाँ प्रतिवर्ष पशुओं का मेला लगा करता है।

सुदूरबंग के अनेक महात्माओं ने काशी आकर जहाँ इस पीठ को पुनीतता दी है वहीं उन्होंने काशीवासियों को अपने दर्शनों से कृतार्थ किया है। महाप्रभु जी की बैठक के पास पहुँचते ही आज भी प्रत्येक काशीवासी भक्ति-विह्वल हो ही जाता है और रामकृष्ण परमहंस के सदावर्त से प्रत्येक जनमन सदा आप्यायित बना हुआ है। मठों मन्दिरों सेवास्थलों के अतिरिक्त रानी भवानी द्वारा बनवाये हुए अनेक मठ मन्दिर तालाब काशी को सांस्कृतिक गौरव प्रदान करने में आज भी कोताही नहीं करते। कर्दमेश्वर का तालाब, भीमचण्डी का मन्दिर उसके अतुलकीर्ति की पताकाएँ हैं। बंगालीटोले का कालीमन्दिर अपने रज-गज और विशेष पद्धति के कारण कलकत्ते के कालीमन्दिर का शुद्ध भाव से प्रतिनिधित्व करता है।

इधर के सम्प्रदायों में से स्वामीनारायण सम्प्रदाय का काफी महत्वपूर्ण स्थान है। कच्छ काठियावाड़ और गुजरात में इनकी बड़ी महिमा और प्रभाव भी है।

इन्हीं का एक मठ मछोदरी तालाब के सामने बना है जो अपने शिल्प शैली के कारण बड़ा सुहावना लगता है। इसमें स्वामी नारायण सम्प्रदाय के ग्रन्थों का पाठ और धार्मिक चर्चा होती रहती है। दक्षिण के तोताद्रि मठ ने भी काशी में अपना एक पीठ स्थापित किया है। वह राजघाट के पास वरुणा के किनारे स्थित है। मठ में किसी खास शैली का अनुकरण तो नहीं किया गया है (जो अवश्य ही चाहिये था) परन्तु मठ का वातावरण अत्यन्त मनोरम है। उसमें स्वामी रामानन्दजी का एक चित्र भी रखा है, जो विचारणीय है। साथ ही मठ के अन्य महापुरुषों के भी चित्र वहाँ की शोभा दुगुनी करते हैं।

'कबीर धारा ज्ञान की सद्गुर दई बहाय, उल्टी ताहि सुमिरन को स्वामी संग लगाय' के आदर्शपर बना राधास्वामी मत भी अच्छी स्थिति में है। इस धारा के तीसरे आचार्य पंडित ब्रह्मशंकर जी हुए हैं। वे यहीं के निवासी और सरयूपारी ब्राह्मण थे। उनकी समाधि कबीरचौरे में बड़ी विशाल बनी हुई है। आश्विन में उनका भंडारा बड़ी धूम-धाम से होता है जिसमें बहुत से अनुयायी एकत्र होते हैं।

मुसल्मानों से काशी का परिचय कब हुआ यह ठीक तो नहीं कहा जा सकता परन्तु आइने अकबरी से पता चलता है कि सन् १०१९–२२ में काशी में यवनारि गहरवार नरेशों से युद्ध हुआ था और १०३३ पानिल्तगीन काशी आया था और १०९४ में शहाबुद्दीन गोरी ने आक्रमण किया था। समझना चाहिये कि इसी हमले में इन लोगों की आमदरफ्त शुरू हुई और तब से जो सिलसिला चला वह आज भी किसी न किसी रूप में कायम है। इस समय काशी में छ मदरसे हैं—१–हमीदिया मदरसा मदनपुरा में, २–मजहरुलउलूम कबीरचौरा अलईपुर में, ३–मतलाउलूम अलईपुर में। तीनों मदरसे इनकी शाखा के हैं और रहमनिया मदरसा मदनपुरा अहले हदीस या वहाबी लोगों की शाखा का है इसके व्यवस्थापक ताजावारिस हैं।

देवबन्द के अनुयायियों का भी एक मदरसा यहाँ मदनपुरा में इसलामिया मदरसे के नाम से है। इसके अतिरिक्त पंजाब निवासी मुहम्मद सैयद

नाम पर सईसिया मदरसा दारानगर में है। यह सब सुन्नियों की संस्थाएँ हैं। शिया लोगों की दो संस्थाएँ एक तेलियानालेपर ईमानिया मदरसा और दूसरा आमलपुरा में जवाजिया मदरसा। इसमें साधारण अरबी की पढ़ाई लिखाई के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। इस सम्प्रदाय के धार्मिक स्थानों में बाग फातमान, घूरे खाँ का इमामबाड़ा (लाल खाँ के चौहट्टे के पास) कुतुबन शहीद और याकूब शहीद मुख्य है। मडुआडीह में शाह तैयब बनारसी और एक स्थान भदऊँ मुहल्ले के आगे बड़े प्रसिद्ध है। समयानुसार यहाँ उत्सव आदि हुआ करते हैं, जिनमें अनेक भक्त अपनी अरदास गुजारने पहुँचते हैं।

धार्मिक पीठों की जो परम्परा सतियों शताब्दियों पहले काशी में आरम्भ हुई थी वह आज भी कायम है।

श्री उदयशंकर शास्त्री द्वारा लिखित तथा १७–२–५७
के 'आज' में प्रकाशित लेख से संकलित।

बौद्धतीर्थ सारनाथ

वाराणसी और सारनाथ श्रवण और ब्राह्मण दोनों ही नाम प्राचीन काल में साथ- साथ लिये जाते थे। बौद्धग्रन्थों में इन नामों का बड़ा आदर है। भारतीय संस्कृति के विकास में आदि से अन्ततक श्रवण और ब्राह्मण विचार-धाराएँ तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग अनुस्यूत रहे हैं। दोनों ही विचार धाराओं के परस्पर आदान-प्रदान और स्पर्धा से इस संस्कृति में भौगोलिक दृष्टि से विशालता, विचारों की दृष्टि से गम्भीरता और सहिष्णुता आ सकी है। बौद्धग्रन्थों में वाराणसी का नाम किसी भी बौद्धतीर्थ की अपेक्षा कम श्रद्धा से नहीं लिया जाता। महायानी देशों में वाराणसी, संस्कृत भाषा और ब्राह्मण (श्रवण के अर्थ में) ये तीन बोधिसत्वों के समान ही पवित्र समझे जाते हैं। यों तो बौद्धों की दृष्टि में पूरा मध्यमंडल ही परम पवित्र है। जहाँ भगवान बुद्ध ने पैंतालिस वर्षों तक चारिका की थी, किन्तु लुम्बनी, जहाँ तथागत का जन्म हुआ, बुद्ध गया, जहाँ तथागतने बोधि प्राप्त किया, सारनाथ मृगदाव, जहाँ उन्होंने प्रथम बार धर्मोपदेश किया, कुशीनगर, जहाँ तथागत परिनिर्वृत हुए, वे स्थान तो महातीर्थ हैं। बौद्ध परम्परा के अनुसार सारनाथ का महत्व इससे भी पुराना है। इसका प्राचीन नाम ऋषिपत्तम मृगदाव था। मृगदाव नाम पड़ने का कारण न्यग्रोध जातक के अनुसार निम्नलिखित है—किसी पूर्वजन्म में गौतमबुद्ध ने मृगजन्म ग्रहण किया था। स्वभावतः मृगों के वह अग्रणी थे। काशीनरेश शिकार के लिये इस वन में आते रहते थे। उनके नृशंसतापूर्ण शिकार से द्रवित होकर मृगराज बोधिसत्व ने उनसे मृगवध बन्द करने की प्रार्थना की। प्रतिदिन एक मृग उनकी सेवा में स्वयं उपस्थित हो जायगा, इस आश्वासनपर काशीनरेश सर्व-संहारी मृगवध से विरत हुए। प्राणदान के इस क्रम में एक गर्भवती मृगी की बारी आयी। वह मृगराज के सामने उपस्थित हुई। मृगराज बोधिसत्व विचलित हो उठे। उसके स्थानपर बोधिसत्व स्वयं चल दिये। महाराज के पूछनेपर

इस व्यतिक्रम का कारण बताकर बोधिसत्व ने उनके सामने बध के लिये अपने आपको प्रस्तुत किया। काशीनरेश ने उनकी इस दयालुता से प्रभावित होकर कहा मनुष्य के रूप में वस्तुतः मैं ही मृग हूँ। आप मृग के रूप में भी मानव हैं। उसी समय से सदा के लिये उस बन में आखेट करना बन्द हुआ। तभी से मृगों के स्वच्छन्द विचरण के लिये यह स्थल मृगदाव बना। ऐसे पवित्र स्थल में ऋषियों का निवास होना ही था। फाहियान के मतानुसार इसीलिये इसका नाम ऋषियों का पत्तन हुआ। सारनाथ (सारंगमृगों के नाथ) शब्द ही बोधिसत्व है। अतः जनरल कनिंघम के अनुसार वर्तमान नाम सारनाथ भी सुसंगत है। वर्तमान बुद्धावतार में गौतम बुद्ध ने यहाँ धर्मचक्र प्रवर्तन कर इस स्थल का और भी महत्व बढ़ा दिया। आगे चलकर इसी स्थान से दुनिया के अधिकतर भूभाग में बौद्ध धर्म के रूप में भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैला। इसी के आधारपर महामानव मनु ने भी कहा कि इस देश के अग्रजन्मा सन्तानों ने पृथ्वी के मानव को चरित्र और धर्म की शिक्षा दी थी।

सारनाथ के स्तूप

वाराणसी से सारनाथ में प्रवेश करने पर सड़क के वाएँ भाग में वर्तमान एक ध्वस्त किन्तु विशाल स्तूप का अवशेष मिलता है; जिसे भगवान बुद्ध की पंचवर्गीय भिक्षुओं से भेंट होने की स्मृतिमें सम्राट अशोक द्वारा बनाया गया था। जह चौखंडी स्तूप के नाम से प्रसिद्ध है। आज इस खंडहर पर आठपहल एक नया शिखर है। इसे सम्राट अकबर ने १५८८ ई० में बनवाया था।

यहाँ से आगे बढ़ने पर दूर से ही ध्यान आकृष्ट करनेवाला १४३ फुट ऊंचा एक विशाल स्तूप दिखाई देने लगता है। जो आज भी भगवान बुद्ध के शब्दों में मानो पुकारता है 'एहि पस्स' आओ और देखो। धर्म वही है जिसे तुम देखोगे और निश्चय करोगे (एहि पस्सिको धम्मो) स्तूप के जैसे जैसे समीप जाते हैं वैसे-वैसे ढाई हजार वर्ष पुराना भगवान का वह संदेश नवीन होने लगता है जिसकी स्मृति में देवताओं के प्रियदर्शीय अशोक ने इसका निर्माण कराया था।

वह संदेश था मेरे समान ही तुम भी दिव्य और मानुष बन्धनों से मुक्त हो जावो। बहुजन के हित और सुख के लिये लोक पर अनुकम्पा करने के लिये देवताओं और मनुष्यों के हित के लिए उनके प्रियजनों की सिद्धि के लिए सुख-पूर्वक संसार में विचरण करो। एक दिशा में दूर मत जाओ, ऐसे धर्म का उपदेश करो जो आदि मध्य और अन्तमें कल्याणकारक है। इस प्रकार यह स्तूप शताब्दियों से मनुष्यको उसकी शाश्वतिक विशालता की ओर महान उत्तरदायित्व का स्मरण कराता आ रहा है। जिसे मनुष्य ने संघबद्ध होकर ढाई हजार वर्ष पहले इसी स्थान पर भगवान बुद्ध के साक्ष्य में निर्मित किया और जहाँ भगवान ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को प्रथम धर्मोपदेश दिया था। यह धर्मचक्र प्रवर्तन स्तूप या धम्मेक स्तूप के नामसे प्रख्यात है। इसी स्तूप की वन्दना के लिये और इसके धूलको मस्तक पर चढ़ाने के लिये शताब्दियों से दुनिया के कोने कोने से हजारों हजार लाखों-लाख स्त्री पुरुष दुर्लंघ्य पर्वत मालाओं को लांघते हुए, घोर जंगलों को पार करते हुए, रेगिस्तान और सागर के विशाल वक्षस्थल को चीरते हुए आते हैं। और चिरसंचित श्रद्धा के पुष्प चढ़ा कर अपने जीवन को कृतार्थ मानते हैं।

महाराज अशोक द्वारा निर्मित उपरोक्त दो स्तूपोंके अतिरिक्त तीसरा भी महत्वपूर्ण स्तूप है जिसे धर्मराजिक स्तूप कहते हैं। इसे भी अशोक ने बनवाया था। आजकल इसकी नींव मात्र उपलब्ध है। १८९४ ई० में इसके ऊपरी भाग का ग्रास काशीनरेश के दीवान जगत सिंह के अज्ञान और लोभ ने कर लिया। दीवान ने स्तूप को गिरा दिया और इसके गर्भ में प्राप्त भगवान बुद्ध की अस्थि आदि शरीर चिन्हों को गंगा में फेंकवा दिया। यहाँ के ईंट-पत्थरों से इस दीवान ने अपना महल खड़ा किया और वर्तमान जगतगंज मुहल्ला बसाया। १८२५ में जनरल कनिंघम और १९०७ में जान मार्शल को प्रयाग से जो कुछ सामग्री मिली उससे इसके महत्वपूर्ण इतिहास का पता चला। महाराज अशोक के निर्माण के बाद कुशाण और हूणों ने भी इसका विकास किया था। तृतीय बार इसका जीर्णोद्धार १०२६ ई० में पालवंश के वंगीय महाराज महिपाल ने कराया था। अन्तिम जीर्णोद्धार १११४ ई० में गहणवारवंशी रानी कुमारीदेवी ने कराया जिसे जगत सिंह दीवान ने समाप्त किया। चौखंडी स्तूप, धम्मेक स्तूप और धर्मराजिक स्तूप
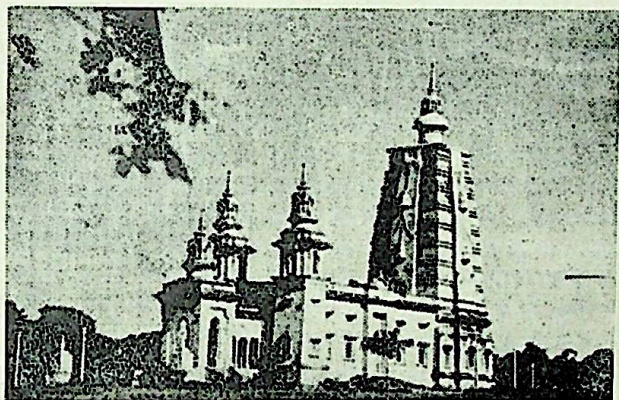
मूलगंध कुटी विहार—सारनाथ
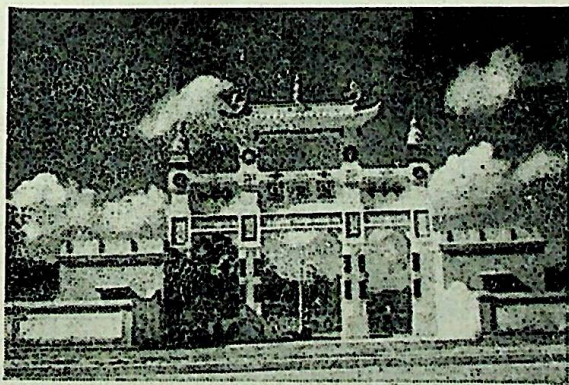
बरमी मंदिर—सारनाथ
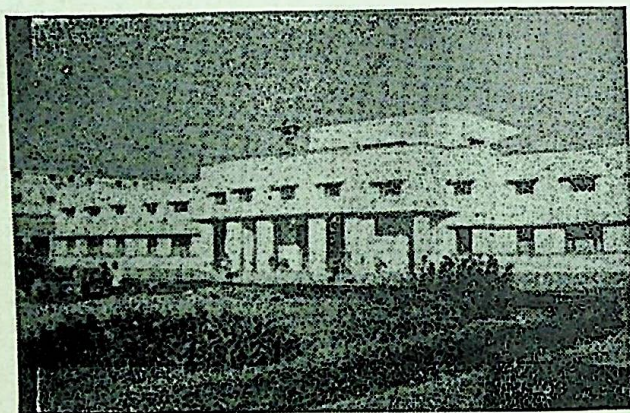
दलाईलामा का निवास-स्थान—सारनाथ
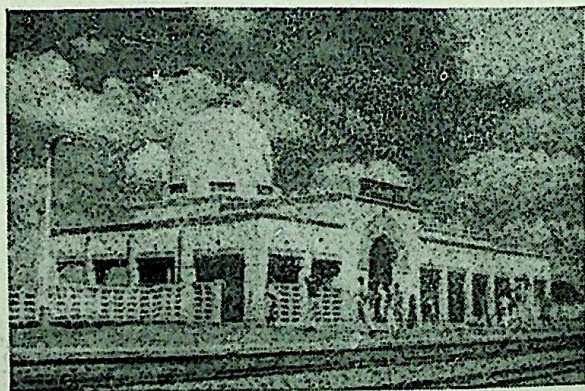
सारनाथ का नया रेलवे स्टेशन

तीनों अपने-अपने निर्माण, पुनरुद्धार, आक्रमण एवं ध्वंस के साथ सारनाथ के सम्पूर्ण इतिहास के साक्षी हैं।

बौद्ध मूर्तियों का विकास

सारनाथ भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। यहाँ ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से १२वीं सती तक की बौद्ध मूर्तियाँ मिलीं। सारनाथ की मूर्तियों के यश प्राप्त करने का एक कारण चुनारगढ़ के लालिमायुक्त सुदृढ़ पत्थर भी हैं।

गुप्तकाल में इसका चरम विकास हुआ। सारनाथ में इन दोनों कालों की उत्कृष्टतत मूर्तियाँ मिली हैं। सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित अशोक स्तम्भ स्थापत्य का श्रेष्ठतम नमूना है। इस स्तम्भ की चार सिंहाकृतियाँ उनके उद्दीप्त पुट्ठे लहरदार अयाल अत्यन्त पुष्ट एवं सजीव है। उन चार सिंहाकृतियों के नीचे चार चक्र हैं जो धर्मचक्र-प्रवर्तन के चिह्न हैं। इन सिंहों के सिर पर भी एक धर्मचक्र था जो अभी टूट गया। नीचे के चार चक्रों के बीच-बीच में वृषभ, अश्व, हाथी, चार पुष्ट एवं गतिशील पशुओं को उभार कर बौद्धधर्म की गतिशीलता और स्वस्थता को प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी है। सिंहों के सहित इस गोलाकार चौकी का कमल की उर्ध्वमुखी पखुड़ियों पर रखा गया है। इस स्तम्भ के प्रत्येक आकृति का बुद्ध और बौद्ध विचारों से सम्बन्ध है। इस स्तम्भ की पालिश का विधान कैसे हो सका यह आज भी विवादग्रस्त विषय बना हुआ है। अस्तु, स्वतन्त्र भारत ने इसे अपना राज्य चिन्ह बनाकर और उस पर उत्कीर्ण धर्मचक्र को अपने राष्ट्रध्वज पर स्थान देकर उचित महत्व दिया है। गुप्तकाल भारतीय कला का समृद्धिकाल है। खोदाई में उस काल की धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में एक बुद्ध मूर्ति मिली थी। कला और भावांकन की दृष्टि से यह मूर्ति बुद्धमूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ है। पद्मासन पर आसीन अर्धोन्मीलित चक्षु, हृदय की अगाध करुणा और मैत्री की सजीव आभा से युक्त मुखमण्डल, इसके पीछे की ओर कलापूर्ण प्रभामण्डल, हाथ की मुद्रा के द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तन, इन सबको मिलाकर इस मूर्ति में एक साथ महाकरुणा और महाप्रज्ञा के चित्रण का प्रयास

किया गया है । आसन के नीचे वे पंचवर्गीय भिक्षु हैं जिन्हें बुद्ध ने सारनाथ में सर्वप्रथम धर्मोपदेश दिया था । तीन और दो भिक्षुओं के बीच में धर्मचक्र उत्कीर्ण है । बगल में नीचे शिशु सहित एक स्त्री की मूर्ति है । जिसने इस ऐतिहासिक मूर्ति की स्थापना का पुण्य प्राप्त किया । यह मूर्ति दर्शकों पर जादूसा असर करती है । सूक्ष्म एवं गहन आध्यात्मिक भावों का इस मूर्ति पर सजीव अंकन कर कलाकार सदा के लिये अमर हो गया । इस मूर्ति का अनुकरण देश-विदेश में सर्वत्र ही हुआ । अशोक स्तम्भ और गुप्तकालीन मूर्ति ने कला के क्षेत्र में सारनाथ वाराणसी को अग्र स्थान दिया था ।

मन्दिर और विहार

सारनाथ के मन्दिर और विहार भी अपनी वास्तु-कला में पिछड़े नहीं थे अनेक मंजिले विहारों के अवशेष यहाँ भी मिले हैं । नालन्दा, साँची आदि इस अग्रणी है । बौद्ध परम्परा के अनुसार भगवान बुद्ध के जीवन काल में यहाँ दो विहार बने थे । एक का बनानेवाला वाराणसी का धनाढ्य व्यापारी नन्दीय था । चीनी बौद्ध यात्री फाहियान ने यात्रा में यहाँ चार स्तूप तथा संघारामों को देखा था । ह्वेनसांग ने यहाँ तीस संघाराम देखा था । उस समय सारनाथ की इमारतें आठ खंडों में विभक्त थीं । सब एक ही प्रकार के अन्य थीं । धर्मराजिक स्तूप के सामने (उत्तर मार्ग में) २२ फुट ऊँचा प्राचीन मन्दिर का एक अवशेष है । प्राचीनकाल का यही मुख्य मन्दिर था । जिसे मूलगन्ध कुटी विहार कहते हैं । भगवान बुद्ध जहाँ निवास करते थे वहां पुष्पादि से पूजित होने के कारण सदा गन्धयुक्त रहता था । महायानियों के अनुसार उनके शरीर से सुगन्ध प्रवाहित होती रहती थी । अतः प्राचीन ग्रन्थों में उसका गन्धकुटी नाम से उल्लेख किया गया है । सारनाथ में भगवान ने तीन मास का प्रथम वर्षावास किया था, और ६१ भिक्षुओं को लेकर पहली बार यहीं संघ की स्थापना की थी । इसलिये उनके इस प्रत्यक्ष निवास भूमि को मूलगन्ध कुटी कहा जाता है । ह्वेनसांग के देखने के अनुसार यह मन्दिर दो सौ फुट ऊँचा था । इस

प्राप्त अवशेष में खचित स्थापत्य से यह गुप्तकाल का प्रतीत होता है। परम्परा के अनुसार यहाँ अति प्राचीन काल से मन्दिर था। इस मन्दिर में भगवान बुद्ध की कायपरिमाण प्रतिमा थी। मन्दिर का सिंहद्वार पूर्वाभिमुख था। उसके आगे एक विशाल खुला हुआ प्रांगण था जिसमें हजारों भिक्षु उपोसथ के समय एकत्र हो सकते थे।

इस मन्दिर के दक्षिण भाग में एक वेदिका पड़ी है। पालिस से वह मौर्यकाल की प्रतीत होती है। सम्भवतः यह धर्मराजिक स्तूप के ऊपर की हर्मिका थी। यह अपनी कला में मौर्यकाल का प्रतिनिधित्व करती है। इस पर उत्कीर्ण दो लेखों से ज्ञात होता है कि इस स्तूप को बना कर सर्वास्तिवादि भिक्षुओं को समर्पित किया गया था।

सारनाथ में अनागरिक धर्मपाल तथा महाबोधि सभा के प्रयत्न से १९२१ में नवीन मूलगन्ध कुटीविहार नाम से एक मन्दिर का निर्माण हुआ। मन्दिर में एक लम्बा सभामंडप है। सामने धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा से युक्त बुद्ध की मूर्ति है। यह मूर्ति ऊपर वर्णित गुप्तकालीन मूर्ति की ही प्रतिकीर्ति है जो सारनाथ के पूरे शान्त वातावरण में मध्यबिन्दु समान है। प्रकाश स्वच्छता और कला का यहाँ उचित संयोजन है। इस मन्दिर की दीवारों पर प्रसिद्ध जापानी कलाकार कासेत्सुन ने भगवान बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं का इतना सजीव चित्रण किया है कि उससे दर्शक मुग्ध हो जाते हैं।

नये मन्दिरों में चीनी मन्दिर चीन देशीय बौद्ध परम्परा का अविकल प्रतिनिधित्व करता है। इस मन्दिर की छजादार बनावट, इसकी दो सौ फुट की ऊँचाई, गर्भ की विशालता, सादगी और स्वच्छता उसमें प्रतिष्ठित एकमात्र बुद्ध की पृथ्वी-स्पर्श मुद्रायुक्त मूर्ति, मूर्ति के आगे अनवरत एक टिमटिमाता दीपक सब मिलकर एक ऐसी शान्ति का संयोजन करते हैं जिससे दर्शक बिना प्रभावित हुए नहीं रहता।

मृगदाव के पश्चिम ब्रह्मदेश का मन्दिर, मठ, धर्मशाला और पुस्तकालय है। बर्मा के भिक्षुओं का प्रसार सारनाथ से अधिक वाराणसी में हो रहा है। मल-

दहिया के विड़ला धर्मशाला के अतिरिक्त भिक्षुओं ने एक नया धर्मशाला बना है। भिक्षु चन्द्रिमा के प्रयास से वहाँ एक पुस्तकालय तथा संघाराम का निर्मा होने जा रहा है। वाराणसी में वर्मियों का दूसरा मन्दिर विद्यापीठ रोड भारतमाता मन्दिर के आगे भदन्त कित्तिमा के प्रयास से बना है। सारनाथ तिब्बत और श्याम आदि देशों ने मन्दिरों के लिये जमीन खरीदी है। तिब्बति का कार्य भी पूर्ण हो चुका है।

शैव और जैन मन्दिर

सारनाथ में बौद्ध अवशेषों और मन्दिरों के अतिरिक्त एक शिवजी का औ दूसरा जैन मन्दिर भी है। प्राचीन गाथाओं के अनुसार शिवजी का यह मन्दि शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित है। किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

कहा जाता है कि सारनाथ महादेवजी बाबा विश्वनाथ के साले हैं। साल श्रावण के सोमवार को बाबा विश्वनाथ अपने प्रिय साले से मिलने आ हैं। काशी महापुरी को छोड़कर भूतभावन बाबा विश्वनाथ का सारनाथ में स्व पधारना सारनाथ के माहात्म्य के लिये पर्याप्त है। सारनाथ काशीवासियों के लि मातुलगृह के समान प्रिय है। श्रावण में यहाँ मेला लगता है।

जैन मन्दिर जैनियों के ११वें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ की पवित्र स्मृति स्थापित है। वर्तमान मन्दिर १८२४ में निर्मित हुआ था। देश के कोने-कोने जैन यात्री यहाँ दर्शनार्थ आते हैं। शान्ति और स्वच्छता की दृष्टि से यह मन्दि आकर्षक है। यह मन्दिर अवश्य ही बहुत से प्राचीन अवशेषों पर खड़ा है देखने से मालूम होता है कि सारनाथ महादेव का मन्दिर भी किसी अवशे पर स्थापित है।

नया सारनाथ

२५००वीं बुद्ध जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने सारनाथ जो कुछ निर्माण कार्य किया है.उससे वह पहले से अधिक सुन्दर और सुविधापू हो गया है। पुराने सारनाथ के देखे हुए लोगों के लिये नया सारनाथ देखनेप

बड़ा कौतूहल होता है। घासों के गलीचे और फूलों की क्यारियों से प्रांगण को सुसज्जित करके मन्दिर, कुतुब और खंडहरों की ऐतिहासिक शालीनता, सौन्दर्य और पवित्रता को सांकेतिक करने की चेष्टा की गयी है। मन्दिर और स्तूपों के पीछे नया मृगदाव, मृगदाव से सटा पानी का झरना, झरने के किनारे झुण्ड के झुण्ड मृगों का चरना, उसके बगल में बच्चों के खेलने के लिये बालवाड़ी, यह सब मिल कर दर्शकों को एक बार ताजा बना देते हैं। पुरानी सड़कों को चौड़ी करके नयी सड़कों से उन्हें मिला कर दो-तीन ऐसे चौक बनाये गये हैं जहाँ खड़ा होकर दर्शक सारनाथ के सौन्दर्य को एक बार निहार लेता है। सारनाथ का स्टेशन यात्रा की अपेक्षा दर्शकों के लिये अत्यधिक आकर्षक हो गया है।

श्रीजगन्नाथ उपाध्याय द्वारा लिखित तथा 'आज' के १७—२—५७ के अंक में प्रकाशित लेख से संकलित।

जैन आचार्यों की उपदेश भूमि काशी

जैन ग्रन्थों में······जैन पंचकल्याण की पूजा में काशी वाराणसी का वर्ण आता है। अभिप्राय यह कि जैन दृष्टि से भी काशी महत्व की तीर्थभूता मह नगरी है। यहाँ जैनधर्म तीर्थंकरों के चार महत्व के तीर्थस्थल है।

१. भेलूपुर, भदैनी, सिंहपुरी और चन्द्रपुरी। रामघाटपर जैन श्वेताम्ब बड़ा मन्दिर है। यह मन्दिर श्री चिन्तामणि पारसनाथ का मन्दिर है। इस अतिरिक्त नगर में ८ श्वेताम्बर जैन मन्दिर है। जैन पुस्तकालय तथा धर्मशाला भी हैं।

सातवें धर्मतीर्थंकर भगवान श्री सुपार्श्वनाथजी का, जिनको हुए बहुत सम बीत चुका है, स्मारक तीर्थस्थल भदैनी घाटपर तीर्थ रूपमें श्वेताम्बर दिगम्ब दोनों का है। दो जैन मन्दिर—धर्मशालाएँ दिगम्बर स्याद्वादमहाविद्याल आदि हैं। इसीसे थोड़ी ही दूरपर भेलूपुर मुहल्ले में २३ वें धर्मतीर्थंकर भगवा श्री पार्श्वनाथजी च्यवन जन्म मुनि दीक्षा कैवल्य प्राप्ति एवं कल्याण का प्रधा तीर्थस्थल है। भव्य मन्दिर धर्मशाला बाग आदि से यह अति सुर तीर्थस्थल है। यहाँपर दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों यात्री आते हैं। यह दोनों सम्मिलित तीर्थस्थल है।

आज से २८०० वर्ष पूर्व इसी काशी देशपर महाराज अश्वसेन की महारा श्रीवामादेवी का राज्य था। इसी राजवंश घराने में पौष कृष्ण १० के दिन पार्श्वनाथजी का जन्म हुआ था। वे लोकोत्तर ज्ञानी थे। अनेक ज्ञानी तपस्वि को आपने वास्तविक अहिंसा धर्म का स्वरूप समझाया था।

एक समय इसी रामघाटपर अज्ञानी कमठ तपस्वी के पंचाग्नि तप को दे असंख्य जनता एकत्र हो कर प्रशंसा कर रही थी। महारानी श्रीमाताजी वामा के अत्याग्रह से श्रीपार्श्वकुमार पधारे। आपने देखा कि कमठ तापस अज्ञान

वश धायं धायं जलते हुए बड़े-बड़े काष्ठों के बीच बैठकर शरीर दमन कर रहा है।

काष्ठभारों में सर्प-युगल को जलते हुए देख भगवान श्रीपार्श्वनाथजीसे रहा नहीं गया और वे कमठ तापस को समझाने लगे। शरीरको जलाना कोई तप नहीं है। यह तप नहीं, जीव हिंसा का कारण हो रहा है। देखो सर्प-युगल इसमें जल रहे हैं। यह कह उन्होंने सर्प-युगल का स्वयं उद्धार किया और पंचाग्नि तप का आध्यात्मिक स्वरूप उस तापस को समझाया। उन्हीं का स्मरण-स्थल भेलूपुर महल्ले में है। सारनाथ में ११ वें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ भगवान के चार कल्याणरूप तीर्थधाम है। दिगम्बरों का बनाया मन्दिर बुद्ध स्तूप के पास है। और श्वेताम्बरों का हिरामनपुर ग्राम के पास ही तीर्थक्षेत्र सिंहपुरीजी के नाम सेप्रसिद्ध है। वहाँ पाँच बीघा जमीन के घेरे में अनेक मन्दिर हैं जो धर्मशाला एवं भव्य बाग से सुशोभित तीर्थस्थल है।

यहाँसे सात कोस की दूरीपर चन्द्रपुरी ग्राम्य ८ वें धर्म तीर्थंकर श्री चन्द्र-प्रभुके चार कल्याणकों का प्रधान स्थान गंगातटपर श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों के बनाये अति प्राचीन महत्व के दो मन्दिर एवं धर्मशालाएं हैं। यहाँ प्रतिवर्ष पौष मास में जैन लोग भगवान की रथयात्रा निकालते हैं। श्रीपार्श्वनाथ जी ने जहाँ पर कमठ तापस को प्रतिबोध देते हुए अर्धदग्ध स्थिति में जलते हुए सर्पयुगल का उद्धार कर अहिंसा तत्व का महत्व जनता को समझाया था उसी स्थल का स्मारक रामघाट मन्दिर १८ वीं शताब्दी के महान ज्योतिर्धर समर्थ विद्वान जैनाचार्य श्री कुशलचन्द्र सूरिजी महाराज का बनाया हुआ है।

यहाँ श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथजी का अतिभव्य आकर्षक श्वेताम्बर बड़ा जैन मन्दिर है। और उसीके साथ जैन उपाश्रम और अतिप्राचीन हस्तलिखित ताड़ पत्रपर लिखे अनेक ग्रन्थों का संग्रह तथा मुद्रित ग्रन्थों का बहुत बड़ा धर्म ग्रन्थालय (पुस्तकालय) है। इसके अतिरिक्त शहर में विभिन्न जैन सद्गृहस्थों के निर्माण किये ८ और जैन मन्दिर श्वेताम्बरों के हैं और उतने ही दिगम्बर जैनों के भी हैं।

संत कबीर

भक्ति आन्दोलन के ज्ञानमार्गी निर्गुणिया सन्त कबीर का अवतरण हिन्दू के गढ़ काशी में सम्वत् १४५६ में हुआ था। इनके जन्म की कथा बड़ी रोच तथा आश्चर्यजनक है। कहते हैं कि काशी का जुलाहा नीरु गौना करा कर अप पत्नी नीमा को लेकर घर आ रहा था, कि लहरतारा नामक स्थान के एक ताल में कमल के फूलपर एक सुन्दर बालक दिखाई पड़ा। नीमा ने उसे उठा लि किन्तु लोकलाजवश नीरु कुछ झिझका। उसी समय यह आकाशवाणी हुई.....

पूर्व प्रीतिके कारणों, दर्शन दीन्हा तोय,
भक्ति संदेशा सुनाइहौं मुक्ति देहियौं तोहि।

इससे आश्वस्त हो नीरु नीमा ब्रह्मज्ञानी बालक कबीर को लेकर घर आ और उनका पालन-पोषण करने लगे। सन्त कबीर के जन्म के बारे में एक अ पद है.....

गगनमंडल से उतरे सतगुरु पुरुष कबीर जलजमांहि पौणनके दूहु दीनन के पीर

कबीर वास्तव में हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों के पीरके रूपमें आवि हुए थे। जब इन दोनों धर्मों के बाह्याचार आडम्बर और पाखंड से मान कराह रही थी उस समय कबीर के कंठ से सबके लिये प्रेम की वाणी फूट पड़ी उनके लिये न कोई ऊंचा था न कोई नीचा। न कोई काफिर था और न को चांडाल। मानवप्रेम ही उनके उद्देश्य का मूलमंत्र था।

कबीर का दर्शन

अर्थहीन आचार व्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचार गुलामी के कबीर घोर विरोधी थे। वे इनके विरुद्ध जीवन पर्यन्त लड़ते रहे उन्होंने धर्म और ईश्वरप्राप्ति का एक दूसरा ही मार्ग बतलाया। उन्हें रा और रहीम, केशव और करीम उसी परब्रह्म के नाम मालूम पड़े। उसे ढूँढ़ने लिये उन्होंने न मन्दिर का मार्ग बतलाया और न मसजिद का रास्ता दिखाया उन्हें रोजा और व्रत से भगवान को पाने का मार्ग गलत मालूम हुआ

उनके राम तो हृदय में ही वास करते हैं। उस परमेश्वर को पानेके लिये कहीं भटकने की जरूरत नहीं है।

मोको कहाँ ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में, ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना काबा कैलास में। ना तो कौन क्रिया कर्म में, नहीं योग बैराग में, खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं पल भर की तलाश में। कहे कबीर सुनौ भाई साधो सब शांसों की श्वांस में।

कबीर की सरल सुबोध वाणी से भारतीय समाज की त्रस्त और प्रताड़ित आत्माओंको शान्ति मिली। इस लोक में कबीर उन्हें त्राता दिखाई पड़े। सवर्ण हिन्दूसमाज द्वारा निष्कासित और भ्रष्ट घोषित जातियाँ कबीर की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुईं। आत्मा और परमात्मा के उनके निर्गुण दर्शन से अन्य हिन्दू मुसल्मान भी प्रभावित हुए। उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों बिहार, मध्यप्रदेश और गुजरात में कबीरदास विशेष रूप से लोकप्रिय हुए।

काशी में कबीरदास

पंचवर्ष के जब भये, काशीमंज कबीर,
दास गरीब अजब कला ज्ञानध्यान गुण वीर।
गुल भई काशीपुरी अटपटे बैन विहंग,
दास गरीब गुनी थके सुनि जुलाहा प्रसंग।

इस अद्भुत बालक को देखने के लिये नीरु-नीमा के घर भीड़ लगने लगी। थोड़ी अवस्था और प्राप्त होनेपर बालक कबीर ने वैष्णव स्वामी रामानन्द से दीक्षा ले ली। कबीर तो स्वयं ब्रह्मज्ञानी थे। उन्हें किसी से दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु अहंभाव का हनन करने के लिये किसी को गुरु मानना जरूरी था। इसके अलावा काशी में गुरु-शिष्य की परम्परा भी थी। शास्त्रार्थ में अक्सर लोग गुरु का नाम पूछ बैठते थे।

स्वामी रामानन्द की माला

इन्हीं सब बातों का विचार कर कबीरदास अज्ञात रूप से स्वामी रामानन्द के पास गये। एक जुलाहे बालक के लिये प्रत्यक्ष रूप से वैष्णव महात्मा के पास

पहुँचना सम्भव नहीं था। अतः वे रात को पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर सो गये। प्रातःकाल जब स्वामीजी गंगा स्नान के लिये उतरे तो उनका पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामनाम के उच्चारण से उन्होंने बालक कबीर को सान्त्वना देते हुए अपनी माला दिखाई। बस कबीरदास के लिये यही दीक्षा हो गयी। इसकी स्मृति स्वरूप कबीरचौरा स्थित कबीर मठ में आज भी स्वामी रामानन्दजी की बहुत सी मालाएँ रखी हुई हैं। कबीरदास की कई टोपियाँ भी हैं। उन सबको एक में रख ऊपर से स्वामी रामानन्दजी की माला लपेटी हुई है।

बाबा गोरखनाथ प्रभावित

काशी में कबीर साहब की चर्चा दिनों दिन बढ़ने लगी। अपने योग का चमत्कार दिखा कर उन्होंने वाममार्गी बाबा गोरखनाथ को प्रभावित किया। कहते हैं सं० १५०४ में साह सिकन्दर लोदी अपने दौरे के सिलसिले में काशी आया था। उसके साथ एक शेखतकी नामक मौलवी भी था। बातचीत में वह कबीर साहब से नाराज हो गया। उसने उनके विरुद्ध शाह का कान भरा। बस, फिर क्या था। शाह ने कबीर साहब को हाथी से कुचलवा देने की आज्ञा दी। किन्तु कबीर के सत्य और तेज के आगे हाथी के पैर आगे न बढ़े। वह चिग्घाड़ मारकर पीछे हट गया। इस कुचेष्टा में विफल होनेपर शाह ने उन्हें जंजीर में बँधवा कर गंगा में फेंकवा दिया। लेकिन थोड़ी देर बाद ही कबीर साहब मृगछाला पर बैठे गंगा में बहते नजर आये। सतगुरु नानक देवजी ने इस मार्मिक घटना का वर्णन अपने ग्रन्थ में इस प्रकार किया है।

गंगे की लहरिया में टूट गईयाँ जंजीर,
मृगछाला पर बैठे कबीर।
गंगा गोसाईन बहे अगम गम्भीर,
तहाँ रखनहारा श्री रघुबीर।
शाह सिकन्दर कहें देखो हे पीर,
कैसो जादू किया है कबीर फकीर।
मुबरिक है इसकी तदबीर,
शाही कब्जेमें न आया कबीर।

कबीरदास के इस चमत्कार से शाह बहुत प्रभावित हुआ। अपने कियेपर
ा पछताया और निम्नलिखित शब्दों में उनकी स्तुति की।

ए कबीर तुम अलख हो पलक बीच प्रवाह,
गरीबदास कर जोर कर ऐसे कहता शाह।

मगहर से तिरोधान

बहुत दिनों तक काशी में प्रवचन करने के बाद कबीरदासजी मगहर जिला
ी चले गये। और वहीं सं० १५७५ की अगहन सुदी एकादशी को उनका
ोधान न हुआ। उनके मगहर जाने के संम्बन्धमें भी कई तरह की बातें कही
ती हैं। कुछ लोगों का कहना है कि काशी के पंडितों के श्राप के कारण वे मग-
गये। मगहर में मरनेपर गदहे का जन्म होता है, ऐसा पंडितों का कहना है
तु कुछ लोगों का कहना है कि पंडितों के श्राप को झूठा साबित करने के
ये कबीरदासजी मगहर गये और वहाँ उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि
ात्मा कहीं भी मरे उसकी मुक्ति निश्चित है। कबीरदास के मगहर जाने के बारे
एक अन्य कथा यह भी है कि नेपाली महात्मा शान्तिदेव द्वारा शासित
हर में जलवृष्टि कराने के लिये वहाँ के नवाब बिजली खां बड़ी विनती कर उन्हें
हर ले गये थे। कबीरदास के मगहर जाने के सम्बन्धमें कथाएँ जो भी हों
के विवाद में नहीं पड़ना चाहिए और न उनके जन्म के बारे में जो मतमतान्तर
उस पर कोई टीका-टिप्पणी होनी चाहिये। किन्तु इतना अवश्य है कि कबीर-
 के जीवन में जो घटनाएँ घटीं उनसे यह स्पष्ट है कि वे एक असाधारण
ष तथा सिद्ध योगी थे।

काशी की शाखा

कबीरदास के शिष्य महात्मा सूरतगोपाल ये अपने सम्प्रदाय की स्थापना
ी में की और कबीर पंथ समझाने के लिये शास्त्रीय विवेचना को ही अधिक
नाया। जनसाधारण के अलावा काशीनरेश महाराज बलवन्तसिंह और
के पुत्र चेतसिंह भी इस सम्प्रदाय के शिष्य हुए। राजाश्रय पा यह सम्प्रदाय

खूब फूला फला। कबीरदास से लेकर अबतक इसके बीस गुरु हो चु वर्तमान गुरु महात्मा रामविलासजी इसी सम्प्रदाय के २१ वें गुरु हैं। १९९६ में इन्होंने काशी के कबीरचौरा मुहल्ले में स्थित कबीरमठ का जी कराया। इसके पूर्व कबीर साहब के प्रवचन के स्थान पर सिकन्दर लोदी के का बना हुआ एक मसजिदनुमा स्थान था। वर्तमान कबीर मन्दिर में क की खड़ाऊँ और उस्ताद रामप्रसाद द्वारा निर्मित अति सुन्दर चित्र रखा हु

गांधीजी और रवीन्द्रनाथ जी पधारे थे

कबीरदासजी के स्थान का दर्शन करने के लिये सन् १९०९ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा सन् १९३३ में महात्मा गांधी, श्री जवाहरलाल रफी अहमद किदवाई, शान्तिनिकेतन के आचार्य क्षितिमोहन सेन, भगवान हरिऔधजी, श्रीरामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास, श्रीरामदास गौड़, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डाक्टर रामकुमार वर्मा आदि राजनीतिक और सा व्यक्ति आ चुके हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग

सन् १९२० के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से ही काशी के कबीर साधु देश के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेते आये हैं। राष्ट्रीय आ में भाग लेने के लिये कबीरदल का संघटन हुआ था। यहाँ के कई सा गोली खा चुके हैं और जेल-यात्रा भुगत चुके हैं। सन् १९३२ में क स्थान में कांग्रेस की बैठक करना खतरे से खाली नहीं था उस समय कार्यसमिति की बैठक कबीरमठ में हुई थी। इसके आयोजन में स्वर्गी शिवप्रसाद गुप्त और श्री सम्पूर्णानन्द का योगदान था। महात्मा रामवि ने उस समय जिस साहस का परिचय दिया था वह उनके आदि गुरु क निर्भीकता के अनुरूप ही था।

श्रीविश्वनाथ प्रसाद सिंह द्वारा लिखित तथा
१७ फरवरी सन् १९५७ में प्रकाशित 'वि

काशी का विश्वनाथ मन्दिर

विभूतिभूषण भट्टाचार्य

जाबाल्युपनिषद में कहा गया है कि जहाँ पापों का क्षय होता है उसे ही शी कहते हैं अथवा जहाँ लोग मुक्ति की कामना से जाकर उसे प्राप्त करे वहीं शी है। काशी की महिमा भारत की महिमा है, भारतीय संस्कृति की महिमा । परन्तु काशी और शिव दोनों का ऐसा तादात्म्य हो गया है कि दोनों को लग-अलग सोच पाना कठिन है। ठीक ही है। जिस स्थान को भगवान् शंकर अपना आवास बना लिया हो उसके स्वरूप में शंका करने की गुंजाइश ही ीं रहती है।

इतिहास पुराण आदि की सहायता से यही जाना जाता है कि काशी में ा से विश्वेश्वर का राज रहा।

ईसा से कई हजार वर्ष पहले काशी वर्तमान थी। रामायण महाभारत में काशी और काशीराज की चर्चा आई है। गीता में भी काशीराज का लेख पाया जाता है। जैसे यहाँ की अन्य बातें विवादास्पद हैं वैसे यह भी विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि काशी में अमुक स्थानपर ही विश्वनाथ सबसे पहला मन्दिर था। इस अभाव का एक प्रमुख कारण राजनीति भी है। र जल वायु तथा जनता की रुचि भी है। अब भी काशी में ऐसे लोग हैं गंगा-गोमती के पास बने हुए मारकंडेश्वर के मन्दिर को ही सबसे पहला न्दिर बतलाते हैं। कुछ लोग यह भी अनुमान करते हैं कि मूल मन्दिर कहीं तीरथ के आसपास रहा होगा। उन लोगों के अनुमान का आधार एक ओर तीरथ दूसरे किनारे पर कृतिविश्वेश्वर और तीसरे छोरपर मद्धमेश्वर और पास विश्वेश्वरगंज का होना है। ज्ञानवापी के पास सत्यनारायण मन्दिर के पीछे दिविश्वेश्वर का मन्दिर आज भी वर्तमान है। इन आदिविश्वेश्वर और

आदिकेशव आदि नामों से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि जब किसी दूसरे लि
की स्थापना की गयी, तब पहले को 'आदि' का विशेषण मिला। अ
विश्वेश्वर के पहले 'आदि' लगानेका प्रयोजन ही क्या। लेकिन ये नाम
इतिहास आप ही बतला रहे हैं। पर उसे समझ पाने के पूरे सूत्र हमारे
नहीं लग सके हैं। काशी में ऐसा कहा जाता है कि पहली बार जब ऐब
से गुजरा था तब उस धक्के को नगद नारायण की सहायता से झेला ग
और तोड़फोड़ की नौबत नहीं आ पायी थी। पर सोमनाथ के विध्वं
प्राप्त मणियाँ जिसकी आखों में समाई हुई थीं उन्हीं आक्रामक एवं लु
एक दल खिलजिये ने ज्ञानवापीपर बनी हुई मसजिद के स्थान पर, जहाँ
पुस्तक एजेन्सी की दुकान है, बने हुए मन्दिर को नष्ट कर दिया। यहाँ
बाबा की विभूति के सिवा हाथ क्या लगता। तो भी उन लोगों को म
शाबाशी के अतिरिक्त क्या मिला? यह नहीं जाना जा सका कि इस
मन्दिर कहाँ किस दशा में था। इसके भी प्रमाण प्रायः नहीं मिलते।
अकबर की आज्ञा से राजा टोडरमल ने सं० १५८० में जहाँ अब ज्ञानवा
मसजिद बनी है, मन्दिर बनवा कर नारायण भट्ट द्वारा शिवजी की प्रतिष्ठा
थी। ऐसा भी सुनने में आता है कि इन्हीं नारायण भट्ट के प्रयास से अ
काशी में नये सिरे से शिवायतन बनाने की आज्ञा दी थी। उस मन्दिर
१६६९ ई० के सितम्बर मास में औरंगजेब ने तोड डाला और शिवजी
में तो यह प्रसिद्ध है कि वे ज्ञानवापी कुएँ में विराजमान है। यदि य
केवल कथा ही हो तो आपतकाल में सब कुछ सम्भव होता है। कहा तो या
जाता है कि ई० सं० के १२७४ से लेकर १६ वीं शती के मध्य तक काशी में
नामांकित शिवायतन नहीं रहा। पर यहाँ की जनता को यह अभाव ख
तो रहा ही, जिसे नारायण भट्ट ने अपने अध्यवसाय से दूर किया।

वर्तमान मन्दिर का निर्माण

आगे चल कर सन् १७७७ ई० में इन्दौर की रानी अहल्याबाई
वर्तमान मन्दिर बनवाया जो इसी सन् के जन्माष्टमी के दिन बन कर पूरा
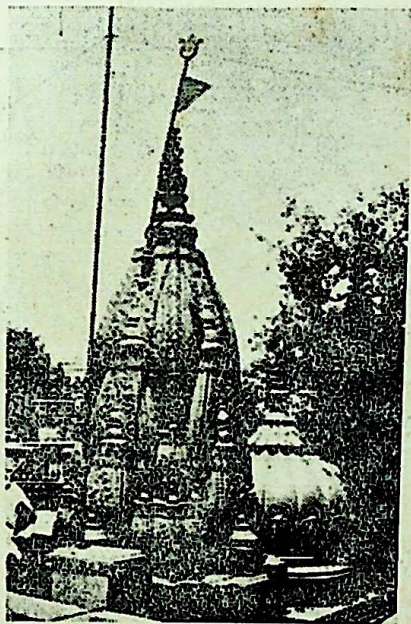
काशी विश्वनाथ मन्दिर
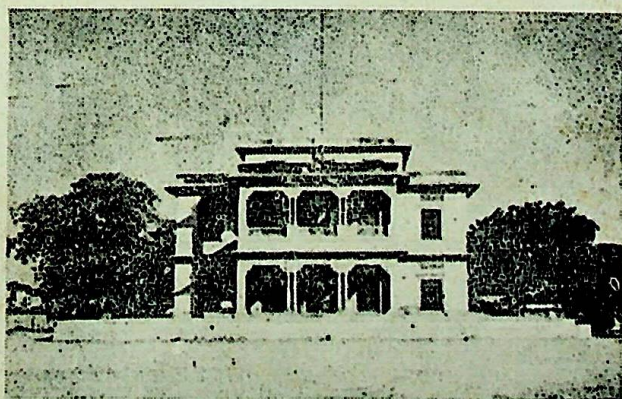
भारत माता मंदिर (काशी विद्यापीठ)
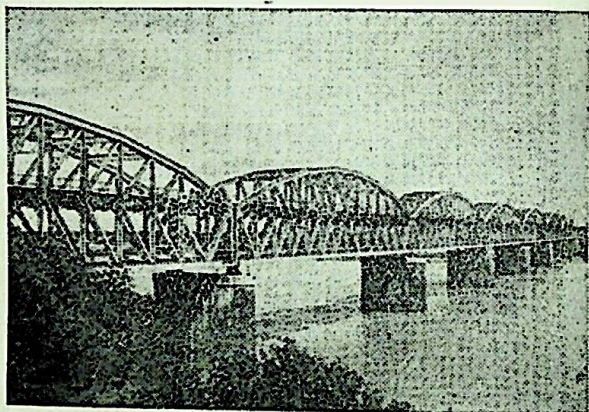
मालवीय वृज—राजघाट
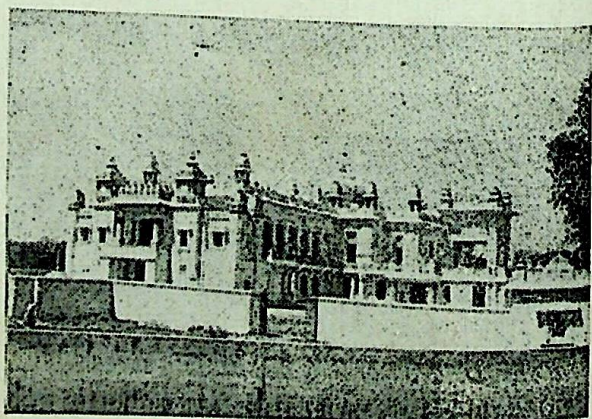
बिरला छात्रावास—काशी हिंदू विश्वविद्यालय

था। इसी प्रसंग में एक बात और उल्लेखनीय है कि इस समय तक विश्वनाथ जी के आस पास अन्नपूर्णाजी का कोई विशाल मन्दिर नहीं था। महाराष्ट्रों की कृपा से यह मन्दिर बना था। अहल्याबाई ने जब यह मन्दिर बनवाने का संकल्प किया तो उस समय यह प्रश्न हुआ कि मन्दिर कहाँ बने। ज्ञानवापी की सीमा के भीतर बन पाना संभव नहीं था। प्राचीन स्थान से बहुत दूर जाना भी बहुत कठिन था। अतएव बड़ी कठिनाईसे थोड़ी सी भूमि प्राप्त करके मन्दिर का बन्धान बाँधा गया...किसी प्रकार मन्दिर तैयार हो जानेपर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई। परन्तु इस मन्दिर में स्थान-संकोच के कारण वह भव्यता और विशालता नहीं आ सकी जो राजा टोडरमल के बनवाये हुए मन्दिर को सहज प्राप्त थी। मन्दिर की भव्यता और विशालता का अन्दाज ज्ञानवापी की मसजिद के पृष्ठभाग में बचे हुए मन्दिर के अवशेषों को देखकर लगाया जा सकता है। अहल्याबाई के बनवाये हुए मन्दिर कें कलश के ऊपर सन् १८३९ ई० में महाराजा रणजीत-सिंह ने २२॥ मन सोना चढ़ाया था। और इसी अवधि में सन् १८२८ ई० में दौलतराव सिन्धिया की पत्नी बायजाबाई ने ज्ञानवापी की बारादरी बनवाई थी।

अन्नपूर्णा का मन्दिर

कहते हैं किसी समय भारत में एक भारी दुर्भिक्ष पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। तब देवताओं ने अन्नपूर्णा को भारतवासियों की रक्षा करने के लिए भेजा। अन्नपूर्णा देवी के नामपर ही दीपावली के अवसर पर अन्नकूट त्योहार मनाया जाता है। इस मन्दिर में नीचे की मंजिल में अन्नपूर्णा जी की चाँदी की मूर्ति है और ऊपरी मंजिल में अन्नपूर्णा, विश्वनाथ, लक्ष्मी और पृथ्वी माता की स्वर्णमूर्तियाँ हैं। रजत मूर्तियों की पूजा वर्ष भर होती है, किन्तु स्वर्ण मूर्तियों का दर्शन केवल अन्नकूट के अवसरपर किया जा सकता है।

ढुंढीराज गणेश

काशी विश्वनाथ के द्वारपर गणेश जी की मूर्ति है। काशी की यात्रा करने वाले हिन्दू गणेश की मूर्ति के दर्शन मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व ही करते हैं।

साक्षी विनायक

कहते हैं कि काशी की यात्रा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के अच्छे बुरे उद्देश्यों के गणेश साक्षी हैं। यात्रीगण पंचकोशी की परिक्रमा करने के पश्चात् इस मन्दिर में गणेश को साक्षी बनाने के लिए दर्शन करते हैं।

सुमेरु मन्दिर

किले से प्रायः एक मील की दूरी पर सुमेरु का मन्दिर है। यह मन्दिर आधुनिक वास्तुकला का एक सुन्दर नमूना है।

इनके अतिरिक्त काशी में अनेक उल्लेखनीय मन्दिर हैं, जिनमें विशालाक्षी देवी का मन्दिर, गोपाल मंदिर, कालभैरव का मन्दिर, दण्डपाणि, बिन्दु माधव, दुर्गाजी, संकठा देवी, बाराही देवी, चौसट्ठी देवी, शीतला देवी, केदार जी, कौड़ियाही, त्रिलोचन, माधव अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ जैन और चीनी मन्दिर भी हैं। नैपाली मन्दिर अपने ढंग का अनोखा है।

भारतमाता मन्दिर

बाबू शिवप्रसाद गुप्त के प्रयत्न से काशी में १९३५ में भारतमाता मन्दिर की स्थापना हुई। इसमें भारत का संगमरमरपर खुदा हुआ एक चित्र है। अपने ढंग का यह भारत में अनोखा मन्दिर है। इसका उद्‌घाटन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने किया था।

ज्ञानवापी

मन्दिरों के अतिरिक्त काशी में अन्य अनेक दर्शनीय धार्मिक स्थान हैं यहाँ उनका उल्लेख असंगत न होगा।

विश्वनाथ जी के मन्दिर के निकट ज्ञानवापी है, जिसका निर्माण ग्वालियर के दौलत राव सिंधिया की विधवा रानी ने कराया था। इस वापी का जल समस्त पापों से मुक्ति दिलाने वाला माना जाता है।

व्यास काशी

काशी से पाँच मील दूर रामनगर में व्यास काशी है। कहते हैं कि वेदव्यास शिव की काशी से ईर्ष्यालु हो उठे। उन्होंने पृथ्वीपर एक दूसरी काशी की सृष्टि करने का निश्चय किया, जहाँ यात्रा करने से मनुष्य को उसी प्रकार मुक्ति प्राप्त हो सके, जैसे शिव की नगरी काशी द्वारा। यहाँ माघ के महीने में बड़ा भारी मेला होता है।

हिन्दू विश्वविद्यालय में मालवीय जी का बनावाया हुआ प्रसिद्ध विश्वनाथ मन्दिर एवं मार्ग में सुरेका जी का बनवाया तुलसी मानस मन्दिर ने काशी की शोभा अत्यधिक बढ़ा दी है। इन्हें देख कर यात्री काशीपर मुग्ध हो जाते हैं। यात्रा सफल समझते हैं।

गोपाल मन्दिर

काशी को यदि सम्प्रदायों का अजायबघर कहा जाय तो अनुचित न होगा। भारतीय संस्कृति की कदाचित ही कोई ऐसी शाखा व उपशाखा हो जिसका दर्शन इस पुनीत संगमपर सुलभ न हो सके। इनमें प्रत्येक की अपनी पृथक विचार-धारा है और उसी के अनुरूप उनकी विभिन्न उपासना-पद्धतियाँ तथा विभिन्न उपासनागृह अथवा मन्दिर हैं।

गोपाल मन्दिर में श्रीभगवान कृष्ण के दो उत्कृष्ट रूप विद्यमान हैं। श्री गोपाललालजी तथा श्रीमुकुन्दलालजी। ये दोनों स्वरूप इस एक ही मन्दिर के दो पृथक स्थानोंपर विराजमान हैं। राधिका सहित श्रीगोपालजी की जो प्रतिमा यहाँ वर्तमान है वह पांडव की सेव्यनिधि है तथा उनकी सेवा एक समय उदयपुर के राणावंश की लाढबाई नामक महिला करती थीं। बाद में श्रीमद् वल्लभाचार्य के चतुर्थ पौत्र गोस्वामी श्रीगोकुलनाथ जी ने लाढबाई से इस प्रतिमा को प्राप्त किया और तब से श्रीवल्लभाचार्य के वंशजों द्वारा ही इसकी सेवा होती आ रही है। श्रीगोपालजी को काशी लाने का श्रेय गोलोकवासी गोस्वामी जीवनलालजी महाराज को है। जिन्होंने सं० १७८७ में कथित प्रतिमा की प्रतिष्ठापना इस नगर में पहली बार की थी। गोपाल मन्दिर का जो स्वरूप आज वर्तमान है वह

सं० १८३४ में इन्हीं जीवनजी महाराज द्वारा प्रदान किया गया था।
वस्तुतः इसलिये यह मन्दिर आज भी गोस्वामी श्री जीवनलालजी की हवे
नाम से विख्यात है।

श्रीगोपालजी के मन्दिर से सटा हुआ श्रीमुकुन्दलालजी का मन्दिर है जि
निर्माण सं० १८८९ में हुआ था। इस मन्दिर में भगवान श्रीकृष्ण के बाल
की बहुत ही मंजुल प्रतिमा अवस्थित है। जिसे गोस्वामी श्रीजीवनलालजी मह
के पौत्र श्रीगिरिधरजी मेवाड स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर से काशी लाये थे।

यह मन्दिर दर्शनार्थियोंके लिए कभी चार बार और कभी आठ बार खु
है और प्रत्येक बार १० व १५ मिनट बाद इसके द्वार बन्द कर दिये जाते
प्रातःकाल मन्दिर में चार मुख्य दर्शन सुलभ होते हैं। मंगला, शृंगार, पा
तथा राजभोग। इसी प्रकार सांयकाल भी मन्दिर चार बार क्रमशः उत्थापन, भं
आरती और शयन के निमित्त खुलता है। गोपाल मन्दिर की मुख्य विशेष
स्वच्छता तथा विशुद्धता। मन्दिर में देवप्रतिमा को स्पर्श करने, उसका
और शृंगार करने का अधिकार केवल दो ही व्यक्तियों को प्राप्त है। यहाँ
अन्य विशेषताएं इस प्रकार है।

जो वस्त्र पहनकर भगवान की सेवा की जाती है सेवाके पश्चात् वही
अपवित्र समझा जाता है। मन्दिर में लगने वाली समस्त भोग सामग्री मन्दि
ही निर्मित होती है। यहाँतक कि बाजार का खोवा तथा मिश्री तक भी उस
में नहीं लाया जाता। यदि कोई बाजारू हलवाई से नैवेद्य लेकर जाता है तो
स्वीकार नहीं किया जा सकता। अगर कोई कृष्णभक्त फूलों की माला भग
को चढ़ाने के लिये लाता है तो उसे उसी रूप में भगवान को अर्पित नहीं
जायगा। उस माला को एक अलग स्थान पर ले जाकर उसको तोड़कर
पुष्पों को पृथक कर लेते हैं और फिर उन्हें एक विशेष डोरे में पिरोकर न
माला तैयार करते हैं। देवोपासना में पवित्रता की यह चरम पराकाष्ठा कदा
ही कहीं अन्यत्र देखने को मिले।

इस प्रकार नगर की गोद में बसा यह मन्दिर शताधिक वर्षों से भा
संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता आ रहा

इसी मन्दिर में वह मनोरम उद्यान विद्यमान है जिसके एक छोरपर कवि सम्राट गोस्वामी तुलसीदास ने विनयपत्रिका की रचनाकर हिन्दू जाति और हिन्दी साहित्य का मस्तक ऊँचा किया था। तथा कुछ लोगों के अनुसार इसी उद्यान में वह स्थल भी वर्तमान है जिसे महात्मा नन्ददास ने अपने साधना केन्द्र के रूप में गौरवान्वित किया था। यह मन्दिर तथा स्थान सम्पूर्ण धार्मिक जगत के लिये श्रद्धा का पात्र है।

६ सितम्बर सन् ५६ के दैनिक 'आज' में प्रकाशित
राजाराम मेहरोत्रा के लेख से संकलित।

दुर्गाजी का मन्दिर

समस्त उत्तरापथ की संस्कृति एवं सभ्यता यदि आज कहीं भी सुरक्षित है तो काशी में ही। सभी सम्प्रदायों के आचार्यों ने आत्मशान्ति इसी स्थानपर प्राप्त की। वैदिक परम्परा तो केवल काशी में ही सुरक्षित है। वेद का पठन-पाठन परम्परा से यहीं होता आया है। वेद के सभी स्कूल यहाँ आज भी सुरक्षित हैं।

काशी शक्ति विचारधारा का भी केन्द्र रहा है। यहाँ शक्ति त्रिकोण है। तीनों कोनों पर दुर्गाजी, महाकाली, महालक्ष्मी एवं बागेश्वरी महासरस्वती विराजमान हैं। इन तीनों शक्तिपीठों के साथ एक-एक कुण्ड भी है। दुर्गाजी के पास दुर्गाकुण्ड, लक्ष्मीजी के पास लक्ष्मीकुण्ड और बागेश्वरीजी के पास बागेश्वरी कुण्ड, इस कुण्ड को पचास वर्ष पहले काशी नगरपालिका ने पटवा दिया था। तीसरी विशेषता यह है कि इन शक्तिपीठों के पास ब्राह्मणों की प्राचीन बस्ती है। दुर्गाकुण्ड के पास भदैनी (भद्रवन) लक्ष्मीकुण्ड के पास रामापुरा (रमापुर) तथा बागेश्वरीजी के पास जैतपुरा (यतिपुर) है।

लक्ष्मीकुण्ड के पास भाद्रपद तथा आश्विन में, दुर्गाकुण्ड के पास सावन में बहुत पुराने समय से मेला लगता है।

दुर्गाजी का वर्तमान मन्दिर बंगाल की प्रसिद्ध दानशीला रानीभवानी का बनवाया हुआ है। कहते हैं कि वर्तमान दुर्गाजी की प्रतिमा के पास बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था। जिसके कारण इच्छा रहते हुए भी लोग बड़ा मन्दिर नहीं बनवा पाते थे। रानीभवानी जब काशी आयीं और इस मन्दिर की जीर्णशीर्ण अवस्था देखी तो वे बिलख पड़ीं। तो उन्होंने पण्डितों से राय ली। यह पीपल का पेड़ क्या किसी प्रकार हटाया जा सकता है। इसपर काशी के पण्डितों ने व्यवस्था दी कि यदि वृक्ष सूख जाय तो शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार उसे हटाया जा सकता है। इसके बाद ही चमत्कारिक ढंग से वृक्ष सूख गया। और रानीभवानी का बनवाया दुर्गाजो का विशाल मन्दिर आज हमारे सामने है।

विदेशी यात्री इसको बन्दरों का मन्दिर (मंकी टेम्पुल) कहते हैं। क्योंकि यहाँ कई सौ बन्दर रहते हैं। जिन्हें यात्रीगण चना आदि खिलाया करते हैं। एक अंग्रेज अधिकारी ने मन्दिर से प्रभावित होकर एक बड़ा घंटा भी भेंट किया था जो आज भी मन्दिर में सुरक्षित है।

दुर्गाकुण्ड

मन्दिर के सामने कुण्ड भी प्राचीन है। परन्तु इसे पक्का कराने का श्रेय बाजीराव पेशवा द्वितीय और उनके भाई श्री अमृतराव पेशवा को है। पेशवा परिवार इस क्षेत्र में काफी दिनों तक रहा है। इनके द्वारा निर्मित अनेक अवशेष आज भी दिखाई पड़ते हैं।

इस कुण्ड के बगल में पूर्व की ओर संगमरमर की एक बहुत ही सुन्दर समाधि है। इस समाधि को कानपुर के प्रसिद्ध ट्रस्ट श्री छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट ने श्री गयाप्रसाद के गुरुस्वामी भास्करानन्दजी के लिये बनवाया था। यहाँ अब सड़कें चौड़ी करके तथा उद्यान बना कर मनोहारी स्थान बना दिया गया है।

श्रीआनन्द बहादुर सिंह

काशी का सुप्रसिद्ध नेपाली मन्दिर

काशी में ललिताघाटपर महाराज नेपाल का बनवाया हुआ सुप्रसिद्ध नेपाली मन्दिर है, इसको 'काठवाला मन्दिर' भी कहते हैं। इसकी अद्वितीय काष्ठकला देखने के लिए विश्व के हरेक कोने से सहस्रों जिज्ञासु आते हैं, इस मन्दिर की चित्रकला एवं निर्माणशैली बेजोड़ है। भारत में ऐसा दूसरा मन्दिर नहीं है। नेपाल नरेश ने इसे नेपाली शिल्पियों द्वारा ही बनवाया था। इसमें लगा हुआ काष्ठ नेपाल में पैदा होनेवाला एक खास किस्म का काष्ठ है, जिसमें कीड़े वगैरह नहीं लगते। मन्दिर में भारत की किसी भी वस्तु का उपयोग नहीं किया गया। ईंटा चूना खपरैल लोहा तथा सोना आदि प्रत्येक वस्तु नेपाल से ही आयी थी। मन्दिर की बनावट नेपाल के मन्दिरों की तरह विचित्र है। नेपाल में नीचे की ओर झुकती हुई चौकोर कई मञ्जिलोंवाली छतें मन्दिरोंपर होती हैं, भटगाँव में भवानी मन्दिर, पाँच पीठ के उपानोंपर अवस्थित पंचमंजिला है। महादेवजी का मन्दिर जो इसी मन्दिर के पास है, दुमंजिला है। काशी का यह नेपाली मन्दिर श्रीपशुपति-नाथ (नेपाल) मन्दिर का प्रतिरूप है। विग्रह पंचमुख न होकर, केवल लिंगात्मक है। उपरोक्त मन्दिरों की समता आप चीन, जापान, बर्मा तथा तिब्बत के पगोडों से कर सकते हैं।

मन्दिर के साथ साथ शास्त्रीय परम्परा के अनुसार एक धर्मशाला, भगवान की फुलवारी, पुजारी के रहने के लिये स्थान और जलाशय की जगह गंगाजी को मानकर घाट भी बनवाया। सौ डेढ़ सौ साधु ब्राह्मणों के लिए क्षेत्र भी चालू किया गया था। शक्ति के स्थानपर श्रीललितादेवी की स्थापना की गयी है। गंगाजी का घाट आप ही के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीललितादेवी की दो प्रतिमाएँ हैं। ठीक घाट के ऊपर जो मूर्ति है, उसकी प्रतिष्ठा श्री ५ ललित सुन्दरी महारानी ने स्वयं की थी। यह मूर्ति बरसात में गंगाजी के चढ़नेपर डूब जाती है। अतः भगवती के आदेशानुसार इसी मन्दिर की छतपर एक और मूर्ति स्थापित की गयी। बरसात में भगवती का यहीं पूजन होता है। इस मूर्ति के साथ एक गणपति तथा काशी देवी की भी मूर्ति है। भगवान के पूजन-अर्चन तथा भोगराग के लिये बहुत सी चल-अचल सम्पत्ति भी भेंट की गयी थी।

अद्वितीय वास्तु-कला और संस्कृति

इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह मन्दिर श्रीपशुपतिनाथ महादेव का है। पाशुपतधर्म के अनुसार ही इसका निर्माण होना चाहिए। पर ऐसी कोई भी वस्तु देखने में नहीं आती। इस मन्दिर पर अङ्कित देवता तथा उनकी मुद्राएँ बौद्ध धर्म (वज्रयान) की ही हैं। धर्मचक्र प्रवर्तिनी मुद्रा और वज्र वगैरह आप प्रत्येक मूर्ति में पायेंगे। वहाँ साथ ही साथ दशावतार भी आपको यथास्थान देखने को मिलेगा। कहीं नाथों की तरह कानों में कुण्डल है, तो कहीं कापालिकों का मुण्ड परिधान तथा तिब्बती परम्परा के अनुसार डमरूवादन शैली का प्रदर्शन बहुत ही मनमोहक है। सिंहद्वार के ऊपर भगवान शंकर का अपने गणों के साथ प्रदोष नृत्य एवं देवी चरित्र के विभिन्न रूप भी देखने योग्य हैं। ८४ सिद्धों के चित्र भी यथास्थान अङ्कित किये गये हैं, जो भारत में अन्यत्र कहीं पर भी नहीं है। इस तरह आपको शाक्त, शैव, बौद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय तथा ब्राह्मण धर्म की एक मिली-जुली संस्कृति की अतीव सुन्दर झाँकी देखने को मिलेगी।

मन्दिर पर कोई भी जगह ऐसी नहीं है, जिस जगह चित्र न हों। मन्दिर पर अंकित छोटे-से-छोटे चित्र भी सजीव हैं। वह अपने बारे में स्वयं सब कुछ बता देते हैं। उस पर विशेषता यह है कि आप अगर चित्रित वस्तु को पास से देखेंगे तो मालूम होगा कि काष्ठ बेढंगे तरीके से छीला हुआ है। जिससे मोटे-मोटे गड्ढे पड़ गये। मूर्तियाँ खरादी भी नहीं गई हैं और न आजकल की तरह बालू के कागज का प्रयोग करके चमक ही पैदा की गयी है। तिस पर भी मुखाकृति और अंगविन्यास अध्ययन करने योग्य है। आभूषणों को देखकर तो ऐसा मालूम होता है मानों अलग से पहनाये गये हैं। गिलहरी, नेवला, मगर आदि जीवों का चित्रण इतना सजीव किया गया है कि एक बार मनुष्य भूल जाता है कि ये काष्ठपर बने हुए हैं। मन्दिर पर अंकित हजारों चित्रों में से चौदह चित्र ऐसे भी हैं, जिन्हें लोग कामशास्त्र का बतलाते हैं। ऐसे चित्र खुजराहों, एकलिंग, पुरी तथा नेपाल के मन्दिरों पर भी नियमित स्थानों पर पाये जाते हैं। इनके विषय में अनभिज्ञ समालोचकों ने मन्दिर बनवाने वाले राजाओं को तथा शिल्पियों को बहुत कुछ भला-बुरा कहा है, पर यथार्थ में ऐसे चित्रों का प्रचलन

'वज्रपातादि मीत्यादि वारणार्थं यथोदितं। मिथुनै रथवल्लभिः शाखा शेषं चेभूषयेत्' इत्यादि 'उत्कल खण्ड' अग्नि पुराण 'बृहद् संहिता' आदि शास्त्रों के वचनों के आधार पर वज्र पातादि से मन्दिरों की रक्षा करने के लिए, प्रारम्भ किया गया था। बाद में उनका प्रयोग सम्प्रदायपरक योगार्थों को समझाने के रूप में होने लगा। वहाँ पर स्त्री और पुरुष का अंमन केवल उपलक्षण मात्र है। समझाने के लिए। वहाँ न पुरुष पुरुष है और न स्त्री नारी के रूप में। परन्तु जो विदेशी यहाँ पर आते हैं उनको इन चित्रों का वासनापरक, कामोद्दीपक अर्थ घृणित रूप से समझाया जाता है। इस सम्बन्ध में वास्तुकला विशारदों का मत है कि आनेवाली पीढ़ी अश्लील चित्रकला को प्रश्रय न दे। अतः तीसरी शताब्दि में ही जिस समय इस कला का स्वर्णयुग था, आध्यात्मवाद से सम्बन्धित कर दिया गया था। आज भी मकान बनवाते समय बहुत जगह झाड़ू डलिया, काली हँड़िया और पुतला वगैरह इसलिए लटका दिया जाता है कि नजर न लगे। रोमन कैथोलिक मन्दिरों में भी यह वस्तु पाई जाती है। यह विषय बहुत गहन है, अतः इसका अनुसन्धान होना आवश्यक है।

मन्दिर की वर्तमान अवस्था

मन्दिर शिल्पकला की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी, भारत सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा सर्वथा उपेक्षित है। वर्तमान में पुरातत्व विभाग की तरफ से भारत के प्राचीन मन्दिरों का सर्वे हो रहा है। जिसमें सी० पी०, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, यू० पी०, दक्षिण प्रान्त और बिहार के मन्दिरों का प्रायः सर्वेक्षण पूरा हो चुका है। कुछ पर अभी लेख तैयार किये जा रहे हैं। पर इस मन्दिर का सूची में नाम भी नहीं है। जब कि इन्हीं मन्दिरों द्वारा विदेशियों से भारत सरकार को करोड़ों की आय होती है, और नहीं धार्मिक दृष्टिकोण से जिन लोगों ने बनवाया है, उन्हीं का ध्यान है।

आज नेपाल के आराध्यदेव श्रीपशुपतिनाथ के अर्चन-पूजन की कोई व्यवस्था नहीं है। सुनने में आता है कि इस मन्दिर के ट्रस्ट से लाखों रुपये की आय होती है। यहाँ जो वस्तुएं मन्दिर की थीं सब इतस्ततः हो गई हैं।

घाट के ऊपर की जमीन बेंच दी गयी है। उसपर किसी दूसरे व्यक्ति का बन गया है। फल यह हुआ कि अब आप घाटसे मन्दिर नहीं देख सकते। मन्दिरका सौंदर्य सर्वदा के लिए नष्ट हो गया। फुलवाड़ी आज मिट्टी और के ढेर के रूप में है। धर्मशाला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में आज भी धर्मशा है। जो मकान हैं, दूसरे के अधिकार में हैं। अन्य क्षेत्र का तो नाम ही नहीं है। अस्तु।

ये बातें तो प्रसंगवश लिखी गई हैं, वस्तुतः यहां मन्दिर का दिग्दर्शन ही उत्तम होगा। इस बरसात में मन्दिर का दुमंजिला पूर्वकी तरफ गया है। तीन तरफ की दीवारें फट गयी हैं। मन्दिर की तरफ प्रायः झुक गयी हैं। शिखर भी उखड़ गया है, जिससे दीवारों के सब बन्धन पड़ गये हैं। अतः वर्षा का पानी दीवारों में प्रवेश कर रहा है। यह नेपाल की बनी हुई अतीव सुन्दर खपरैलों से छाया हुआ है। मरम्मत अभाव में खपरैल भी एक-एक करके गिर रहे हैं जिससे जगह-जगह छेद हो गये हैं। वर्षा का पानी इन छिद्रों के द्वारा मंदिर पर अंकित समूह की लकड़ियोंपर गिरता है जिससे ऊपर की तरफ के सब काष्ठ सड़ दो स्तम्भ तो एकदम ही सड़ गये हैं। मैंने मन्दिर की परिस्थिति से सूचना महोदय को विशेष व्यक्तियों द्वारा सूचित करवाया, पत्र व्यवहार किया स्वयं भी मिला, तथा उनकी सहानुभूति भी प्राप्त की। मुख्यमन्त्री को भी काशी के विशिष्ट नागरिकों के हस्ताक्षरों से युक्त एक निवेदन तत्सम्बन्धी चित्रों के साथ दिया और मन्दिर के टूटने की सूचना भी चित्र के साथ दी। परन्तु पता नहीं क्यों इस अमूल्य निधि की सुरक्षा की तात्कालिक व्यवस्था नहीं की गयी। आशा है इस सम्पत्ति के विभाग से संबंधित अधिकारी वर्ग नेपाल सरकार से या स्वयं व्यवस्था कर, अतिशीघ्र सुरक्षा का प्रयास कर अमूल्य निधि की रक्षा करेंगे।

अष्टकूप नौ बावली

आज जिस स्थानपर पक्की सड़क है और आज जो नगर का एक मुख्य मार्ग है वहाँ ९५७ वर्ष पहले एक विकट और विशाल नाला था। नाला इतना विशाल था कि उसका नाम ही पड़ गया था""विपुल नाला जो आगे चलकर बुलानाला हो गया।

यों तो काशी क्षेत्र का विस्तार यदि पुराने माप के अनुसार निश्चित किया जाय तो उसके लिए शर्त यह होगी कि मैदागिन के आगे मध्यमेश्वर को केन्द्र-बिन्दु मानकर वहाँ एक खूटे में एक इतनी लम्बी रस्सी बाँध दी जाय जो देहली विनायक अर्थात् भटौली गाँव तक पहुँच सके। वहाँ से गोलाई में घूमते हुए पुनः वहाँ पहुँच जाने पर जितना भूमिखण्ड उस गोलाई के अन्तर्गत आये उतनी भूमि काशी क्षेत्र के अन्दर मानी जाती है। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में हमें काशी क्षेत्र के उतने ही अंश से मतलब है जिसपर वर्तमान नगर बसा हुआ है।

वर्तमान नगर की एक सीमा राजघाट स्टेशन है तो दूसरी सीमा अस्सी। इन दोनों सीमाओं के भीतर बसे हुए नगर को देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह स्थान कभी जलाशयों से इतना अधिक भरा हुआ था कि यहाँ समुद्र को छोड़कर अन्य जितने भी प्रकार के जलाशय सम्भव हो सकते हैं अर्थात् सरिता, सरोवर, वापी, कूप, नाले और कुण्ड सभी प्रचुर संख्या में प्राप्त होते थे। इसी लिए आज भी यह नगर अष्टकूप, नौ बावलियों का नगर कहा जाता है। बावलियाँ तो काल समुद्र में विलीन हो चुकी हैं परन्तु आठों कुएँ अब भी वर्तमान हैं जिनके नाम हैं—वृद्ध-काल कूप, काल कूप, चन्द्र कूप, कलश कूप, धर्म कूप, शुक्र कूप, गोकर्ण कूप और कर्दम कूप। वृद्ध-काल कूप का एक नाम धन्वन्तरि कूप भी है जो मृत्युंजय के मन्दिर के ठीक बगल में स्थित है। कहा जाता है कि इस कूप में धन्वन्तरि ने अपनी सभी औषधियाँ डाल दी थीं।

काल कूप दंडपाणि की गली में है और चन्द्र कूप सिद्धेश्वरीपर। कलश कूप, धर्म कूप और शुक्र कूप क्रमशः काश्मीरीमल की हवेली, मीरघाट और कालिका गली नामक मुहल्ले में है। गोकर्ण कूप का पुराना पता दैलूकी गली है परन्तु दैलूकी गली भी आजकल कोदई की चौकी कहलाती है। कर्दम कूप वर्तमान नगर के बाहर पंचक्रोशी यात्रा के प्रथम पड़ाव कंदवा नामक गाँव में है। इस स्थानपर वह मन्दिर भी है जो काशी का प्राचीनतम मन्दिर कहा जा सकता है कारण, काशी में आज जितने मन्दिर हैं वे तीन सौ साल के अन्दर के ही हैं। पुराने मन्दिर तो मध्यकाल में तोड़ दिये गये थे और उनमें से उक्त मन्दिर ही शायद आक्रामकों के रास्ते में न पड़ने के कारण, बचा रहा है।

उक्त आठ शास्त्रीय कूपों के अतिरिक्त काशी में और भी दो कुएँ विख्या हैं जिनमें एक है नाग कुआँ और दूसरा है सोरा कुआँ। प्रवाद है कि नागकुँ पर महर्षि पतंजलि ने शास्त्रार्थ किया था।

वापियों में दो वापियों के नाम मिलते हैं जिनमें एक है ज्येष्ठावापी, दूस है ज्ञानवापी। ज्येष्ठावापी भूतभैरव पर थी जो अन्य वापियों के साथ ही लु और गुप्त हो गयी है। ज्ञानवापी अत्यन्त संकुचित रूप में अब भी विश्वना मन्दिर और आलमगीरी मसजिद के बीच मौजूद है। बौलियाबाग नामक स्था पर भी कभी कोई विशाल वापी—बावली थी। हो सकता है कि वह भी प्रसिद्ध वापियों के ही अन्तर्गत रही हो।

जहाँतक सरिताओं का सवाल है—यहाँ गंगा और वरुणा नामक दो नदि अब भी प्रवाहित हो रही हैं। अस्सी का नाला भी मौजूद ही है। पंचगंगाघ तो पाँच नदियों का संगम-स्थल कहा जाता है जिनमें गंगा तो प्रत्यक्ष हैं औ सोते से निकलने वाला पानी किरणा नदी का चिह्न माना जाता है। शेष यमु सरस्वती और धूतपापा नामक नदियाँ वहाँ गुप्त बताई जाती हैं।

प्राचीन काल में, अर्थात् जिस काल की चर्चा हम कर रहे हैं, गंगा पा कर राजघाट आनेवाला व्यक्ति जब वर्तमान नगर की ओर बढ़ता था तो उ सर्वप्रथम मत्स्योदरी तीर्थ नामक बहुत बड़ा तालाब मिलता था। वहाँ ओंकारे महादेव के दर्शन का विधान था।

मत्स्योदरी तीर्थ मछोदरी तालाब के नाम से लघु रूप में अब भी मौजूद यद्यपि उसका अधिकांश सड़कों और मुहल्लों के रूप में परिवर्तित हो गया । ओंकारेश्वर महादेव आजकल हुक्कालेसन महादेव कहलाते हैं ।

मत्स्योदरी से आगे पश्चिम की ओर बढ़ने पर मन्दाकिनी तीर्थ मिलता था इसका विस्तार एक ओर टाउनहाल तक और दूसरी ओर मध्यमेश्वर तक था । त तीर्थ में स्नान कर लेने के बाद मध्यमेश्वर महादेव के दर्शन की व्यवस्था थी । उक्त स्थान का माहात्म्य बतलाते हुए कहा गया है कि मन्दाकिनी में स्नान जो मध्यमेश्वर का दर्शन करता है वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों सहित रुद्रलोक निवास करता है ।

प्राचीन काल में यह नियम सा था कि जहाँ मन्दिर हो वहाँ कोई जलाशय अवश्य रहे जिसमें उस जलाशय में मार्जन कर लेने के बाद ही लोग मन्दिर में यँ । इसी नियम के अनुसार बड़े गणेश के मन्दिर की बगल में भी एक तालाब जो कालान्तर में सूख और सिमट जाने के कारण गणेश गड़ही कहलाता था । १९११ तक नगरपालिका के कागजपत्र में उस स्थान का नाम गणेश गड़ही लिखा हुआ है । गणेश गड़ही के सर्वथा सूख जाने पर उसी स्थान पर हरिद्र कालेज की वर्तमान इमारत निर्मित हुई है ।

हरिश्चन्द्र कालेज के उत्तर पश्चिम ईश्वरगंगी तालाब है और उसके अर्थात् लेज के ठीक दक्षिण सप्तसागर नामक मुहल्ला है जहाँ पहले बहुत ही लम्बे चौड़े नदित तालाब थे । बहुत बड़े तालाब को सागर या सगरा कहा जाता है । प्राचीन ल में जो नगर व्यापारिक मार्ग में पड़ते थे वहाँ सगरा जैसी कोई चीज अवश्य ती थी । कारण सार्थवाह के लिए यह आवश्यक होता था कि वह सगरा में ष्णु की स्वर्ण-मूर्ति विसर्जित करने के बाद ही यात्रा के लिए आगे बढ़े ।

सप्तसागर के एक पार्श्व में विपुल नाला या बुलानाला था जिसके आगे चौक नि के सामने मुरदे जलाये जाते थे और उनकी हड्डियाँ अस्थिक्षेप तड़ाग में डी जाती थीं । अस्थिक्षेप तड़ाग अब नहीं रह गया है और उसके ऊपर हड़हा मक मुहल्ला बस गया है । दूसरी ओर गंगा के किनारे ब्रह्म ह्रद नामक जलाशय

था जो बाद में नाला बन गया और उसी स्थान पर ब्रह्मनाल नामक मु
बसा हुआ है।

गोदौलिया नाम से विख्यात सड़कपर कभी गोदावरी तीर्थ था। वह
वर्तमान मारवाड़ी अस्पताल के ठीक नीचे था। पुराने लोगों से सुना
उक्त तीर्थ की सीढ़ियाँ उस अस्पताल के नीचे ज्यों की त्यों मौजूद हैं। गोदौ
के पूरब डेड़सी का पुल नामक स्थान स्वयं बताता है कि कभी वहाँ कोई
अवश्य था जिस पर पुल बना हुआ था। अब न नाला है और न व
परन्तु नाम अब भी जीवित है। इसी स्थान पर दक्षिण की ओर अगस्त्य
नामक मुहल्ला है। कुण्ड निशात सिनेमा की बगल में कहीं था।

गोदौलिया से रामापुर की ओर बढ़ने पर कुण्डों की भरमार-सी है
रामकुण्ड, लक्ष्मीकुण्ड, सूर्यकुण्ड। ये तीनों कुण्ड अब भी हैं परन्तु इ
पास एक विशाल पुष्करिणी भी थी जो पट गयी और उस पर मिसिर
नामक मुहल्ला बस गया है। इसके भी आगे सिगरा मुहल्ला है जिसका ना
बतलाता है कि वहाँ कभी कोई सागर जैसा विशाल तालाब था।

नगर के दक्षिण भाग में भी लोलार्ककुण्ड और कुरुक्षेत्र जैसे
आज भी वर्तमान हैं।

इस प्रकार आज का नगर, जो सड़कों और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों का
कभी जलाशयों का नगर था और तभी उसका 'अष्ट कूप नौ बावली का
नाम सार्थक था। वर्तमानकाल में नगर की सड़कों ने भी अपना रुख
दिया है यह नगर बसने पर यहाँ की सभी सड़कें पश्चिम से पूरब गंगाजी
आती थीं परन्तु अब वे उत्तर से दक्षिण जाती हैं। मैदागिन से गोदौलिया
ओर जाते समय जहाँ कहीं दाहिने हाथ की ओर गली दिखाई पड़ती
ठीक बायें हाथ की ओर भी गली अवश्य रहती है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता
कभी ये गलियाँ परस्पर मिली हुई थीं और किसी समय उन गलियों के
मकानों को तोड़कर वर्तमान सीधी सड़क निकाली गयी है। नगर का रूप
दिन बदलता जा रहा है। सम्भवतः अगली शताब्दी वाराणसी नगर का
किसी दूसरे ही रूप में करेगी।

काशी परिक्रमा

शिवपुराणमें कोटिरुद्र संहिता के २३ वें अध्याय में शंकरजीने पार्वतीजीसे काशी की सीमा का वर्णन किया है जिसमें बताया गया है कि ५ कोस में विस्तृत यह काशी सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध है। मत्स्यपुराण में भी काशी क्षेत्र के विस्तारका वर्णन है—दो योजन अर्थात् चार कोस पूर्व से पश्चिम और आधा योजन अर्थात् एक कोस उत्तर से दक्षिण विस्तृत यह वाराणसी है।

इस पंचक्रोश विस्तीर्ण वाराणसी की परिक्रमा और यात्राएँ कई प्रकार की हैं जिनमें तीन अत्यन्त प्रमुख हैं। प्रथम पंचक्रोशी यात्रा, द्वितीय अन्तर्गृही यात्रा और तृतीय पंचतीर्थी यात्रा है। इनमें सबसे बड़ी पंचक्रोशी है। एक चौरासी कोस की भी काशी की परिक्रमा थी। पंचक्रोशी यात्रा का अर्थ होता है काशी परिक्रमा। यद्यपि इस यात्रा के लिए कोई समय निश्चित नहीं है तथापि कार्तिक और मार्गशीर्ष में अधिक महत्त्व माना गया है।

पंचक्रोशी का महत्त्व साक्षात् शंकर जी ने पार्वती से वर्णित किया है, जिसका उल्लेख स्कन्दपुराण काशी खण्ड और शिवपुराण में भी मिलता है। पंचक्रोशी के भीतर ही अविमुक्त है। यहाँ की देवी देवताओंके दर्शन से अन्यत्र का किया हुआ किसी भी प्रकार का पातक दूर हो जाता है। यहाँ तक कि ब्रह्म-हत्या भी दूर हो जाती है। मनुष्य का ही नहीं किसी भी प्राणी का मोक्ष हो जाता है, पुनः मातृजठर में नहीं आना पड़ता। विभिन्न देवों के दर्शन से मनुष्य का अन्तःपटल स्वच्छ हो जाता है और उसका अज्ञान भगवान् शंकर की कृपा से नष्ट हो जाता है। पापबुद्धि नहीं रह जाती। परन्तु वाराणसी के पाँच कोस के भीतर किसी प्रकार का अपवित्र कार्य नहीं करना चाहिये। काशी परिक्रमा से न केवल इस जन्म के बल्कि जन्म-जन्मान्तर के भी पाप नष्ट हो जाते हैं। परन्तु पंचक्रोशी के भीतर किये गये पाप वज्रलेप हो जाते हैं। अतः शुद्ध हृदय से काशी-परिक्रमा करनेपर ही उसका फल मिलता है।

पंचक्रोशी यात्रा

यह यात्रा करीब ४७ मील की होती है। यात्रा लम्बी होने के कारण
विश्रामस्थल बने हुए हैं। ये पाँच स्थान हैं—मणिकर्णिका से कर्दमेश्वर
की दूरी पर। वहाँ से ९ मील की दूरी पर द्वितीय विश्रामस्थल भीमचण्डी
भीमचण्डी से १४ मील रामेश्वर और वहाँ से ८ मील शिवपुर है। शि
६ मील कपिलधारा और वहाँ से ३ मील मणिकर्णिका घाट है। ये पाँचों वि
स्थल यात्रियों की सुविधा के लिए अच्छे बने हैं।

यह यात्रा मणिकर्णिका में स्नान करके विश्वेश्वर के दर्शन के अनन्त
विनायकों, दण्डपाणि, कालभैरव के दर्शन के बाद मणिकर्णिका घाट से शु
होती है। सम्पूर्ण परिक्रमा में करीब ३३ प्रमुख स्थान और १०८ देवी
दर्शन होते हैं। प्रथम विश्रामस्थल कर्दमेश्वर (कन्दवा या कनवा गाँव) तक
में निम्नलिखित प्रमुख स्थानों के विभिन्न देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं

मणिकर्णिका घाट—मणिकर्णिकेश्वर, सिद्धविनायक, गंगाकेशव, ललि
ललिता देवी, मीरघाट—जरासन्धेश्वर, सोमेश्वर, मानमन्दिर—दालभेश्वर,
श्वमेध—आदिवाराहेश्वर, शूलटंकेश्वर, बन्दीदेवी, पांडेघाट—सर्वेश्वर, केदार
केदारेश्वर, हनुमानघाट—हनुमदीश्वर, भदैनी से अस्सी संगम, लोल
लोलार्केश्वर, अर्कविनायक और अस्सी संगमेश्वर, मणिकर्णिकासे अस्सी
तक तो गंगा का तट रहता है पर यहीं से तट छोड़ना पड़ता है।

मार्ग में दुर्गाजी, दुर्गाविनायक, कमैतापुर—विष्वक्सेन, प्रसिद्ध
ग्राम कर्दमेश्वर के पास प्रथम विश्रामस्थलपर पहुँचते हैं। यहाँ रात
कर दूसरे दिन भीमचण्डी के लिए यात्रा प्रारम्भ कर देते हैं। यहाँ से
अन्तर्गत जिन प्रमुख स्थानों और देवी देवताओं के दर्शन करते हैं
लिखित हैं।

कर्दमेश्वर से भीमचण्डी

कर्दमेश्वर, कर्दमकूप, सोमनाथेश्वर, विरूपाक्ष, नीलकण्ठेश्वर, नाग
अवना गाँव—चामुण्डा, मोक्षेश्वर, करुणेश्वर, वीरभद्रेश्वर, विकटा

उन्मत्त भैरव, नीलगण, कालकूटगण, विमलदुर्गा, महादेवेश्वर, नन्दिकेशगण, भृंगीरिटिगण, गौरगाँव—गणप्रिय, विरूपाक्ष, यक्षेश्वर, पयागपुर—विमलेश्वर, मोक्षेश्वर, ज्ञानदेश्वर, असवारी ग्राम—अमृतेश्वर—इनका दर्शन करते हुए भीमचण्डी पहुँचते हैं। यहाँ रातभर ठहरने के बाद दूसरे दिन रामेश्वर की यात्रा प्रारम्भ करते हैं।

भीमचण्डी से रामेश्वर

रामेश्वरतक मार्ग में पड़ने वाले स्थान तथा देवी-देवता—गन्धर्व सागर रविरक्ताक्ष गन्धर्व (इनका दर्शन स्त्रियाँ नहीं करतीं), चण्ड विनायक, भीमचण्डी, नरकार्णवतारक शिव, कचनार गाँव—एक पापगण, हर्रा तालाब, भैरव, महाभीम, भैरवी देवी, दीनदयालपुर—भूतनाथेश्वर, सोमनाथेश्वर, लगोटिया हनुमान, सिन्धुसराधन, कालनाथेश्वर, कपर्देश्वर, चौखण्डी गाँव—कामेश्वर, गणेश्वर वीरभद्रगण, गणनाथेश्वर, देहलीविनायक, षोडशविनायक, उद्दण्डविनायक, उत्कलेश्वर, रुद्राणीदेवी, तपोभूमि—वरुणतीर्थ इनका दर्शन करते हुए तृतीय विश्रामस्थल रामेश्वर पहुँचते हैं। यहाँ से दूसरे दिन शिवपुर चतुर्थ विश्रामस्थल के लिए ८ मील की यात्रा प्रारम्भ होती है। मार्ग में पड़ने वाले स्थान तथा देवी-देवताओं के नाम निम्नलिखित हैं—

रामेश्वर से शिवपुर

चौखण्डी गाँव—रामेश्वर, सोमेश्वर, भरतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, शत्रुघ्नेश्वर, द्यावाभूमीश्वर, नहुषेश्वर, वरुणापार—असंख्याततीर्थ, असंख्यातलिंग, देव संघेश्वर, सदरबाजार—पाशपाणिविनायक, खजुरी गाँव—पृथ्वीश्वर, स्वर्गभूमि, यूपसरोवर तीर्थ—इन स्थानों और देवी-देवताओंका दर्शन करते हुए शिवपुर पहुँचते हैं। शिवपुर आज भी बहुत ही सुन्दर स्थान है। यहाँ द्रौपदीकुण्ड है। यह काशी का प्रसिद्ध उपनगर व्यापार और उद्योग के लिए विख्यात है। यहाँ रात भर विश्राम करने के बाद पाँचवें विश्रामस्थल कपिलधारा की यात्रा प्रारम्भ होती है।

शिवपुर से कपिलधारा और वहाँ से मणिकर्णिका

ऐसा सुना जाता है मंदराचल से काशी आने के समय मार्ग में शंकरजी ने यहीं विश्राम किया था। यहीं पर अनेक कपिला गौओं ने अपने दूध से भगवान शंकर का अभिषेक किया था, अतः इस तीर्थ का नाम कपिलधारा तीर्थ पड़ गया। कपिलधारा जाते समय मार्ग में निम्नलिखित स्थान एवं दर्शनीय प्रमुख देव-देवियाँ पड़ेंगी—वृषभध्वजेश्वर, ज्वाला नृसिंह, वरुणा संगम आदिकेशव, संगमेश्वर, खर्वविनायक, प्रह्लादेश्वर, त्रिलोचनेश्वर, बिंदुमाधव पंचगंगाघाट, गभस्तीश्वर, मंगलागौरी, वशिष्ठ वामदेव, पर्वतेश्वर का दर्शन करते हुए मणिकर्णिका घाट, महेश्वर और सिद्धविनायक का दर्शन करते हैं। मणिकर्णिका में स्नान करने के अनन्तर काशी विश्वेश्वरका दर्शन कर पंच विनायकों का स्मरण करते हुए साक्षीविनायक का दर्शन कर ज्ञानवापी से होकर अपने-अपने घर जाते हैं। कुछ लोगों ने शिवपुर को विश्रामस्थल न मानकर कपिलधारा को चौथा और अपने घर को ही पाँचवाँ विश्रामस्थल माना है।

पंचक्रोशी यात्रा में विभिन्न विनायक, अर्क और गण तथा शिवलिंगों के दर्शन और वहाँ के कुण्डों में स्नान प्रधान कार्य माना जाता है।

अन्तर्गृह की यात्रा

यह पंचक्रोशी की अपेक्षा लघु परिक्रमा है। सम्भव है कि बड़ी यात्रा में अनेक कठिनाइयां दुःसाध्य समझ कर इस मध्यम यात्रा का भी विधान किया गया हो। जिससे लम्बी यात्रा न हो सके वह इस अन्तरगृह की यात्रा कर उस फल का भागी हो सकता है।

यह यात्रा मध्यम कही जाती है। इसका भी प्रारम्भ मणिकर्णिका से ही करते हैं। यह यात्रा यों तो कभी भी की जा सकती है पर पुरुषोत्तम मास में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को यह यात्रा अधिक फलवती मानी जाती है। मणिकर्णिका में स्नान करके विश्वनाथ अन्नपूर्णा, सिद्धिविनायक के दर्शन के बाद अस्सी के लिए प्रस्थान

करते हैं। मार्ग में स्थित देवी-देवताओं को नमस्कार करते हुए लोलार्ककुण्डपर पहुँचते हैं। यहाँ अस्सी संगमेश्वर, अर्कविनायक का दर्शन करके पंचक्रोशी वाली सड़क न पकड़कर अस्सी नाला के पास ही पास दुर्गाकुण्डपर पहुँचते हैं, दर्शन करने के बाद शंकुधारा खोजवां होते हुए बैजनत्था आदि प्रधान देवी देवताओं का दर्शन करके बेनिया पार्क होते हुए अन्तरगृही की यात्रा समाप्त करते हैं। यह यात्रा यद्यपि छोटी है, पर इसे एक ही दिन में समाप्त करनेपर अधिक फल होता है।

तीसरी परिक्रमा

तीसरी परिक्रमा में पंचतीर्थ का ही अधिक माहात्म्य मानकर पंचक्रोशी और अन्तर्गृहकी यात्रा का फल प्राप्त कर लिया जाता है। इस यात्रा का प्रारम्भ बहुतों के विचार से अस्सी संगम से प्रारम्भ होता है। मत्स्यपुराण में भगवान् शंकर ने पार्वती से वाराणसी के सभी तीर्थों का सार पाँच तीर्थों को बताया—(१) दशाश्वमेध, (२) लोलार्क, (३) केशव (आदिकेशव), (४) बिन्दुमाधव और (५) मणिकर्णिका।—

लोलार्क

अस्सी संगमपर स्नान करके संगमेश्वर और लोलार्कपर अर्कविनायक को नमस्कार करते हैं। लोलार्ककुण्डको देखकर ऐसा लगता है कि यह गंगाजी से छोड़ा गया स्थान है जो बाद में कुण्ड रूप में बनाया गया है।

लोलार्क से होकर दशाश्वमेध के लिए चल पड़ते हैं।

(२) दशाश्वमेध

दशाश्वमेध में स्नान कर शूलटंकेश्वर का दर्शन करते हैं। दशाश्वमेध का वृत्तान्त काशीखण्ड के ५२ वें अध्याय में मिलता है। यहाँपर स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है जैसा कि इसका अर्थ ही है।

(३) वरुणा संगम

वरुणा संगम में स्नान कर आदिकेशव का दर्शन करते हैं। आदिकेशव संगमपर वलिकेशव के पास और आदित्यकेशवके पश्चिम है । आदिके वृत्तान्त काशीखण्डके ५१ वें अध्याय में है। इसके बाद बिन्दुमाधवको करते हैं।

(४) बिन्दुमाधव (वेणी माधव)

पंचगंगा घाटपर बिन्दुमाधव हैं। आज इनको वेणीमाधव भी कहते माधवदास के धरहरे के पास है। वहाँ का पंचनद तीर्थ बहुत प्राचीन महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसी पंचनद को आज पंचगंगा भी कहते हैं। यहीं माधव सत्ययुग में आदिमाधव, त्रेता में अनन्तमाधव, द्वापर में श्रीदमाधव कलियुग में बिन्दुमाधव और उसमें भी आज वेणीमाधव और माधव गये हैं। जिस प्रकार लोलार्कपर लोलार्क षष्ठी प्रसिद्ध है उसी प्रकार बिन्दु का भी कार्तिक मास में दर्शन करने का अधिक फल है। काशीखण्ड के अध्याय में पंचगंगा घाट के लिए पंचब्रह्माण्ड संज्ञा दी गयी है।

(५) मणिकर्णिका

मणिकर्णिका का महत्त्व सभी तीर्थों से अधिक है। इसी महत्ता और श्रे कारण आज भी देहावसान होने के बाद काशी का मृतपिंड यहीं लाया जा आज मणिकर्णिकापर जाने के लिए कहना एक प्रकार का शाप माना जा मणिकर्णिका का वृत्तान्त काशीखण्ड के २६ वें अध्याय में है। यहाँ उत्तर गंगा हैं। मृत्यु के समय यहींपर शंकरजी अपना तारक मन्त्र मृत प्राय के कान में देते हैं, अतः इसका यह नाम पड़ गया। वरुणा और अस्सी के यह काशी का मध्यभाग मणिस्वरूप है, अतः इसका नाम यह पड़ा। सम्बन्धमें स्कंदपुराण की कथा है—महाप्रलय के समय जब कोई नहीं शंकरजी ने, जो ब्रह्मकी मूर्तिमात्र थे, अपने समान पार्वतीजी को बनाया अपना अन्य भार किसीपर देने के लिए विष्णु को बनाया। विष्णु को दें
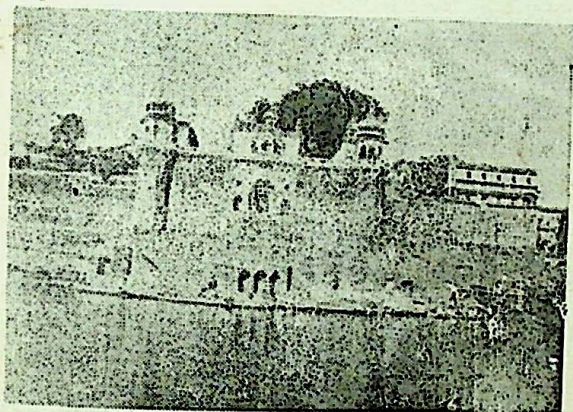
शिवालाघाट
(राजा चेतसिंह अंग्रेजों से यहीं से लड़े थे)
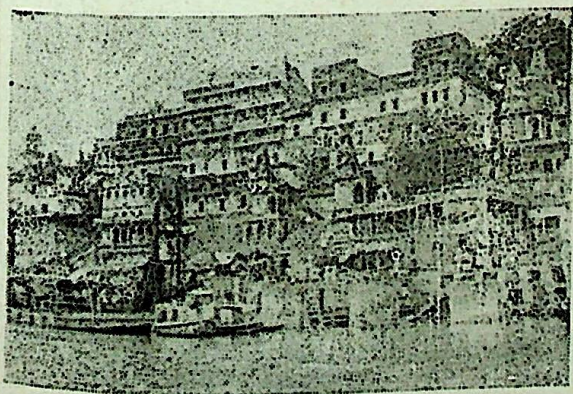
अहिल्याबाई घाट
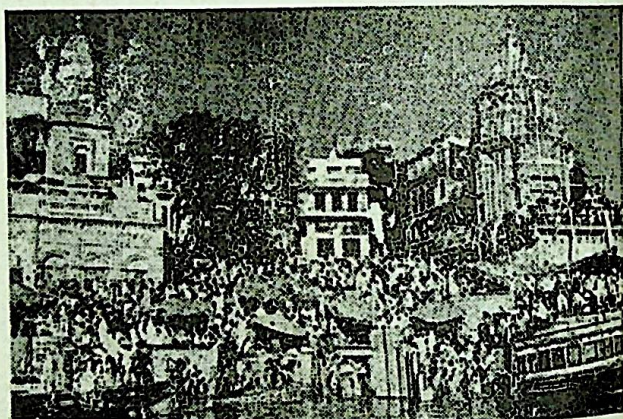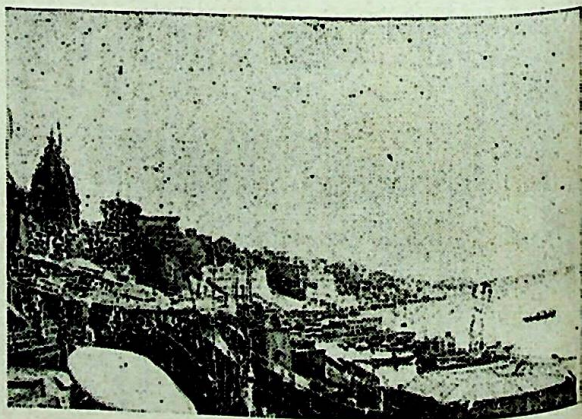
दशाश्वमेध घाट

प्रयाग घाट (दशाश्वमेध)

मार्ग से कार्यसम्पादन करने की आज्ञा दी। विष्णु ने अपने चक्र से एक पुष्करिणी खोदी।

इस पुष्करिणी को अपने पसीने से भर दिया और वहीं पर ५० हजार वर्षों तक तपस्या की। यह देखकर महादेवजी के कान के सर्पालंकार रूप कर्णकुंडल लाल हुआ और उनकी मणि जो कान की थी वहीं गिर गयी इसलिए उसका नाम मणिकर्णिका रखा गया।

इन तीर्थों का भ्रमण आज पौराणिक अध्ययन के लिए भी आवश्यक है और इससे एक प्राचीन परम्परा का भी पता लगेगा। इस प्रकार काशी की परिक्रमा बहुत ही महत्त्वपूर्ण और फलदायी है। इसे दूर-दूर के व्यक्ति करने के लिए आते हैं।

काशी के घाट

काशी में इस समय लगभग ५१ घाट हैं। इसमें से कुछ घाट ऐसे हैं जिनका नाम समय-समय पर बदलता रहा है। इन घाटों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

अस्सी घाट : यह घाट प्रारम्भ से ही कच्चा है। पक्का घाट यहाँ कभी नहीं बना इस घाट के ऊपर जगन्नाथजी का मन्दिर है। इसी घाट से लोग पंचक्रोशी की यात्रा आरम्भ करते हैं।

रत्नामिश्र का घाट : यह पक्का घाट है। महाराज रणजीत सिंह के दरबार में रहनेवाले सारस्वत ब्राह्मण श्रीरत्नामिश्र ने इसका निर्माण कराया था। पिछले दिनों तक यह घाट रीवा स्टेट के अधिकार में था।

बाजीराव घाट : पूना के अन्तिम पेशवा बाजीराव ने यह घाट बनवाया था। यह टूटीफूटी हालत में है।

तुलसी घाट : इस घाट के ऊपर तुलसीदासजी का मन्दिर है। वहाँ उनकी खड़ाऊँ अभीतक सुरक्षित है। पिछले दिनों इसकी कुछ मरम्मत हुई है।

जानकी घाट : सुरसरि की महारानी ने यह घाट बनवाया था। घाट के ऊपर राज्य का मकान और मन्दिर भी है। इसी घाट से वाटरवर्क्स गंगाजी का पानी लेता है।

वंशराज घाट : यह घाट आजकल स्याद्वाद दिगम्बर जैन विद्यालय की सम्पत्ति है। इसी घाट के ऊपर यह विद्यालय है। और कई जैन मन्दिर भी बन गये हैं।

शिवाला घाट : यह घाट महाराज बलवन्त सिंह के कोषाध्यक्ष पण्डित बैजनाथ मिश्र ने बनवाया था। यह घाट अभी तक अच्छी हालत में है। घाटपर बारहदरी महल बाग और मन्दिर भी है। इस घाट का ऐतिहासिक महत्व भी है। इसी घाट पर ईस्टइण्डिया कम्पनी के सैनिकों के साथ महाराज चेतसिंह का

युद्ध हुआ था। और वह खिड़की के रास्ते गंगा में कूदकर लापता हो गये थे। इसपर कम्पनी ने अपना अधिकार कर लिया। और बाद में पेंशन पानेवाले मुगल बादशाह के वंशजों को दे दिया था। बहुत दिनों बाद स्वर्गीय काशीनरेश ने इसे फिर खरीदा। मरम्मत कराई और मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया।

दंडी घाट : इस घाट पर कई मठ है। आजकल इसकी स्थिति दयनीय है। घाट का नाम भी बदल गया है।

हनुमान घाट : यह घाट पक्का है। घाट के ऊपर हनुमान का मन्दिर है। नागाओं का जूना अखाड़ा मठ है। मद्रासियों की वहाँ बस्ती है।

हरिश्चन्द्र घाट : यह काशी का प्राचीन श्मशान घाट है। इसकी हालत भी अच्छी नहीं है।

केदार घाट : यह काशी के प्रमुख घाटों में है। इसकी स्थिति संतोषजनक प्रतीत होती है।

लक्ष्मी घाट : इस घाटपर नागा साधुओं का निर्वानी और निर्जनी अखाड़ा मठ है।

चौकी घाट : यह अत्यधिक टूटी हालत में पड़ा हुआ है।

सोमेश्वर घाट : इसकी हालत भी दयनीय है।

मानसरोवर घाट : यह घाट अजमेर के महाराज मानसिंह का बनवाया हुआ है। इसी के पास नारद घाट है।

चौसट्टी घाट : बंगाल के राजा दिगम्पति द्वारा यह घाट बनवाया गया है। इस घाट के ऊपर चतुःषष्ठीदेवी का मन्दिर है। होली के दिन इसपर अत्यधिक भीड़ होती है।

राणा घाट : यह घाट उदयपुर के राणा द्वारा बनवाया हुआ है।

मुंशी घाट : यह घाट नागपुर के दीवान मुंशी श्रीधर नारायण द्वारा बनवाया गया था। काशी के घाटों में यह घाट दर्शनीय है। इसमें पत्थर की कारीगरी चित्त को चमत्कृत करती है। आजकल यह घाट दरभंगा महाराज के अधिकार में है।

अहल्याबाई घाट : इन्दौर की महारानी अहल्याबाई ने यह घाट बनवाया है। घाट के ऊपर-ऊपर इन्दौर राज्य का मकान भी है।

दशाश्वमेध घाट : यह घाट वाराणसी की चौपाटी है। नागरिकों के लिये घूमने फिरने की यही एक जगह है। यह सबसे प्रसिद्ध और पावन घाट माना जाता है। यह एक चौड़ी सड़क से शहर से मिला हुआ है। काशी के पंचतीर्थों में इसका भी एक स्थान है। इसके ऊपर अनेक मन्दिर बने हुए हैं। कहते हैं कि महाप्रतापी राजा दिवोदास ने काशी के सभी देवताओं को निकाल दिया था। अतएव ब्रह्मा ने उसे दशाश्वमेध करने के लिये कहा। दशाश्वमेध में यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो उसका फल जाता रहता है। साथ ही उसका पाप भी भोगना पड़ता है। ब्रह्मा को आशा थी कि राजा दिवोदास इस यज्ञ को विधिवत् पूर्ण न कर सकेगा। और उसकी शक्ति जाती रहेगी। परन्तु राजा ने अश्वमेध का समस्त कार्य विधिपूर्वक किया। ब्रह्मा की असफलता के बाद यह कार्य शिव को सौंपा जिन्होंने राजा दिवोदास का दमन करके काशी में पुनः देवताओं को प्रतिष्ठित किया। कहा जाता है कि सम्राट समुद्रगुप्त ने भी इसी घाटपर अश्वमेध यज्ञ किया था। इस घाट के सम्बन्ध में स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल ने लिखा है कि गुप्त साम्राज्य काल के आसपास महावंश वाकाटक और भारशिव राजाओं ने यहाँ दस अश्वमेध यज्ञ किये थे।

घोड़ा घाट : यह कच्चा घाट है। नौका द्वारा नगर में जो सामान आता है वह इसी घाट पर उतारा जाता है। मुख्य रूप से चुनार से आनेवाले पत्थर, लकड़ी, भूसा आदि इसी घाटपर उतारा जाता है।

मानमन्दिर घाट : यह घाट जयपुर के राजा मानसिंह ने बनवाया है। घाट के ऊपर महल भी है। इस महल का एक कमरा अपनी कलात्मक बनावट के लिये प्रसिद्ध है। १६३३ में राजा मानसिंह के वंशज अम्बरी के जयसिंह ने यहाँ आब्जरवेटरी ज्योतिष सम्बन्धी वेधशाला का निर्माण कराया था।

मीर घाट : इस घाट के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि मीर रुस्तमअली ने बनवाया था। इस घाटपर मीर का किला भी था। जिसे तोड़वाकर काशीनरेश
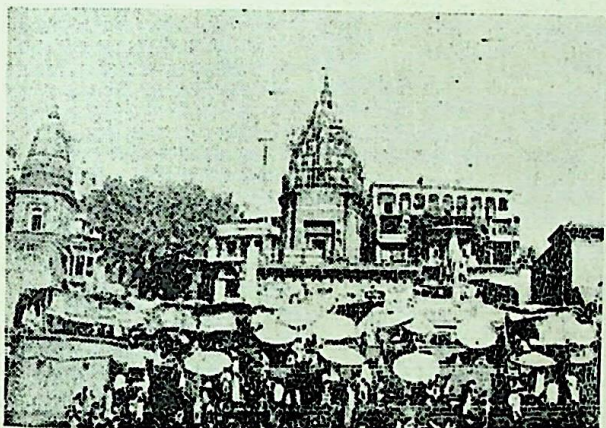
मणिकर्णिका घाट
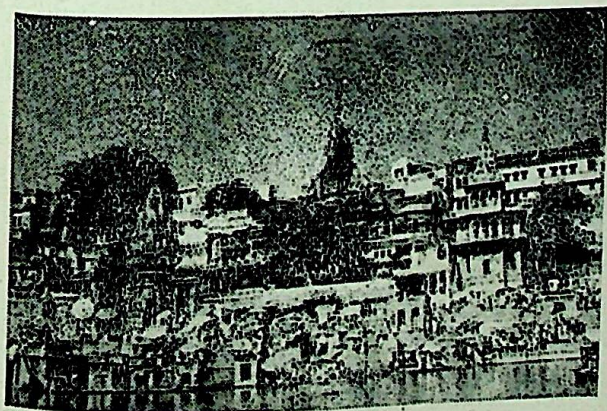
मणिकर्णिका तीर्थ क्षेत्र
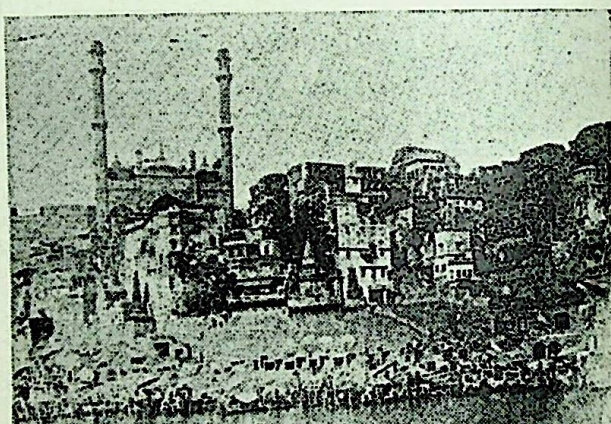
पंचगंगा घाट (धरहरा सहित)
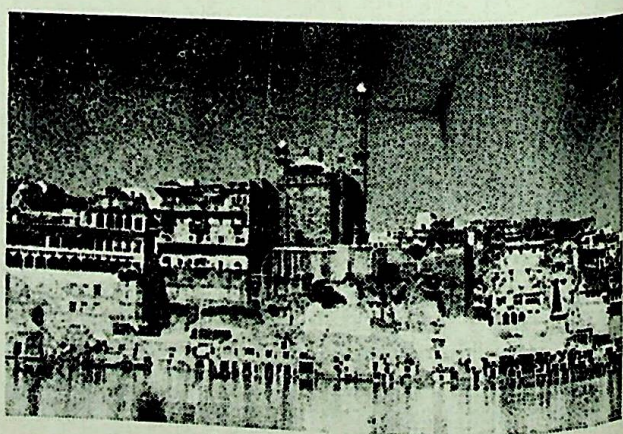
पंचगंगा घाट (१ धरहरा सहित)
अब दोनों धरहरे गिर गये हैं।)

बलवन्तसिंहजी ने उसी के सामान से रामनगर का किला बनवाया है। यह घाट आजकल अत्यधिक दयनीय स्थिति में है।

त्रिपुराभैरवी घाट : यह घाट ऊपर से अच्छी हालत में है। लेकिन जो भाग पानी में है वह ध्वस्त हो चुका है।

ललिता घाट : यह घाट भी जीर्णशीर्ण अवस्था में है। इस घाट के ऊपर राजराजेश्वरी मठ है। इस मठ में राजराजेश्वरी की दर्शनीय मूर्ति स्थापित है। यह मठ अब बिक गया है। यहींपर वह नैपाली शिवमन्दिर है जो पुरी के प्रसिद्ध मन्दिर के अनुकरणपर बनवाया गया है। इस मन्दिर के बाहरी भाग में कामशास्त्र सम्बन्धी आसनों की कलात्मक मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

श्मशान घाट : मणिकर्णिका का श्मशानघाट बहुत पुराना नहीं है। लेकिन फिर भी करीब १७० वर्ष से उस घाटपर श्मशान है। पहले हरिश्चन्द्र घाटपर ही शवदाह होता था। यह घाट अवध के नवाब सफदरजंग के तोशखाने के खजांची लाला कश्मीरीमल के समय से यहाँ है। महामना मालवीयजी के प्रयत्न से इस घाट की मरम्मत हो गयी है और श्मशानघाट अच्छी हालत में बन गया है। आजकल यहाँ बिड़ला द्वारा बनवाया हुआ शवदाह करने आये लोगों के विश्राम के लिए धर्मशाला बन जाने से सर्वसाधारण को बहुत आराम मिलता है।

मणिकर्णिका घाट : इस घाट को इन्दौर की महारानी अहल्याबाई ने १७९५ में बनवाया था। कहा यह जाता था कि घाट पूरी तरह बन नहीं पाया था कि बीच में ही महारानी का देहान्त हो गया। अतः घाट का एक हिस्सा अधूरा ही रह गया। जो अबतक उसी तरह पड़ा हुआ है। इस घाट के ऊपर मणिकर्णिका का कुण्ड है। इस कुण्ड में प्राकृतिक जलस्रोत है जिनसे निरन्तर दुग्धोज्वल जल निकलता रहता है। कहा जाता है कि पाताल से निरन्तर निकला करता है। काशी के पंचतीर्थों में इसका भी स्थान है। हिन्दू लोगों का विश्वास है कि इस कुण्ड में विष्णु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। गंगाजी के अर्द्धचन्द्र के मध्यबिन्दुपर यह स्थित है। काशी का सबसे प्राचीन घाट माना जाता है। कथा है कि यहाँ शिव के कान की बाली गिर पड़ी थी जिसमें मणि जड़ा था। इससे घाट का नाम पड़ा है। वहाँ चरणपादुका बनी हुई है। उसे विष्णुजी का पदचिन्ह कहा जाता है।

सिंधिया घाट : सन् १८३० ई० में महाराज ग्वालियर की महारानी फैजा ने यह घाट बनवाया था। लेकिन बनने के कुछ दिन बाद ही यह घाट ध्व हो गया। पिछले दिनों ग्वालियर राज्य ने इसको फिर से बनवा दिया। इस यह घाट सीमेन्ट से बना है।

संकटा घाट : संकटा घाट के ऊपर गहनाबाई का बनवाया हुआ संकटा का मन्दिर है।

गंगामहल घाट : यह घाट पक्का है।

भोंसला घाट : सन् १७९५ में नागपुर के भोंसला राजा ने यह घाट बन था। यह सुरक्षित है।

अग्नीश्वर घाट : पूना के अन्तिम बाजीराव पेशवा ने यह घाट बनवाया

राम घाट : करीब २०० वर्ष पहले जैपुर राज्य की ओर से यह बनवाया गया है।

लक्ष्मण बाला घाट : इस घाट के ऊपर बाजी राव पेशवा का महल आजकल इस महलपर सिंधिया महाराज का अधिकार है। इस घाट के ऊ ग्वालियर राज्य के दीवान बालाजीपन का जटार मन्दिर है। यह मन्दिर ज मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

पंचगंगा घाट : आमेरके राजा मानसिंह ने यह घाट बनवाया है। इसी के ऊपर औरंगजेब द्वारा निर्मित मसजिद और माधवराव का धरहरा था। मे एक धरहरा गिर गया। अब दोनों ही गिर गये हैं। इसी घाटपर पण्डित जगन्नाथ अपनी यवन पत्नी के साथ गंगालहरी का पाठ करते हुए गंगा गोद में समा गये थे।

राजघाट : पेशवा के नायब राजा विनायक राव ने यह घाट बनवाया इसकी हालत भी ठीक नहीं है। इसी के पास पांडेय घाट भी है।

इनके बाद राजघाट तक अन्य अनेक घाट हैं। मालवीय पुल के उत्तर दूरीपर गंगा वरुणा का संगम है।

यहाँ ऋषि वैली ट्रस्ट द्वारा संचालित वसन्त कालेज है जो एक शिक्षा संस्था है।

काशी का पौराणिक महाश्मशान

लेखक—पुरुषोत्तमलाल दवे

अधिक लोग मणिकर्णिका के वर्तमान श्मशान को और कुछ लोग नाम के भ्रम से हरिश्चन्द्रघाट के श्मशान को पौराणिक महाश्मशान समझने की भूल करते रहे हैं। प्राचीन स्थानों का पता लगाने का एकमात्र आधार काशी का कवाला डाकूमेण्ट है। काशी खंड इन दोनों श्मशानों में से किसीको भी वह प्रसिद्ध पौराणिक महाश्मशान समझने की आज्ञा नहीं देता। काशी खण्ड के अनुसार विश्वेश्वर के विशाल मन्दिर के उत्तर ओर महाश्मशान और दक्षिण ओर ज्ञानवापी होनी चाहिये। जहाँ से निरन्तर एक ओर तारक मंत्रदान और एक ओर ज्ञान चर्चा होती रहती है। बौद्धों द्वारा ज्ञानवापी को पाट देने से, यवनों द्वारा विश्वेश्वर मन्दिर का ध्वंस, काशीवासियों के सिमिट कर बस जाने से, और अंग्रेजों द्वारा मंदाकिनी··मैदागिन··तीर्थ से गोदावरी··गोदौलिया तीर्थ तक सड़क निकाल देने से विश्वेश्वर के प्राचीन मन्दिर महाश्मशान और रत्नजड़ित सोपानों वाली ज्ञानवापी का स्वरूप ही लुप्त हो गया। सम्पूर्ण ज्ञानवापी के हाते में मसजिद मंडप कूप और धर्मशाला का कुछ अंश पड़ गया। विश्वेश्वर के विग्रह की जगह रजिया सुल्ताना के नाम से मसजिद परिधि में सड़क कारमाइकल पुस्तकालय और सेठों की हवेलियाँ खड़ी हो गईं। और महाश्मशान की जगह पुलिस का चौक थाना, नगर का प्रमुख बाजार और एक से एक पक्के महाल के महल विद्यमान है। जहाँ देश-देशान्तर से आकर मरनेवालों की भीड़ लगी रहती थी। वह महाश्मशान जहाँ तीन दिनों तक चितारूढ रहने के बाद अस्थिसिंचन होता था, वह महाश्मशान और जहाँ सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिये चाडांल-वृत्ति स्वीकार की थी। वह महाश्मशान यमधर्मेश्वर महादेव से लेकर वर्तमान संकठा घाट, त्रिवेणी तीर्थ, या अस्थिनिक्षेप तीर्थ वर्तमान हड़हा बेनियाँ तक विशाल महाश्मशान था। संकठा घाट की वर्तमान

सीढ़ी के उत्तरी किनारेपर यमधर्मेश्वर का छोटा सा मन्दिर वर्तमान है। औ
कार्तिक में यमद्वितीया को वहाँ स्नान का पर्व लगता है। संकठा घाट की सीढ़
उतरना आरम्भ करते ही दक्षिण की तरफ काशीखण्डोक्त हरिश्चन्द्रेश्वर महा
का मन्दिर आज भी एक गृहस्थ के आवास के रूप में वर्तमान है। सत्तीचौत
का महाल रानी कुआँ में भद्दोमल की कोठी के नीचे चित्तेश्वर के शिवाले में अ
भी काशीखण्डोक्त श्मशानविनायक की मूर्ति विद्यमान है और त्रिवेणी तं
बेनिया वन कर तथा पट कर पार्क के रूप में प्रमुदित करता है।

इतने प्रमाणों के बाद अब यही प्रश्न बाकी रह जाता है कि वर्तमान क
के दोनों श्मशान कैसे प्रज्वलित होकर अस्तित्व में आये और वह प्राचीन श्मश
कैसे शान्त होकर लुप्त हो गया।

इतिहास प्रसिद्ध जैचन्द्र के सुपुत्र हरिश्चन्द्र जो काशी में राजा क
यवनार्य के नाम से प्रसिद्ध थे, उनके समय में कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रम
राजघाट का किला नष्ट हो गया। फलतः किले के आसपास से हट कर पग प
सरोवर मन्दिर और उपवनवाले आनन्दवन में मनुष्यों की टोलियाँ सिमि
बसने लगी। आनन्दवन नगर हो गया, उपवन उजड़ गये। सरोवर स्वयं ग
खाने लगे। देवता पैर सिकोड़ कर कम से कम स्थान में गुजर करने लगे।
दिनों तक चितारूढ रहने के बदले मुमुक्षु तीन घंटे में ही अस्थिसिंचन करा
विदा होने लगे। केवल गंगा तटपर ही अपना अस्तित्व कायम किया। पर
संयोग से कुछ दिन पूर्व के प्रसिद्ध काशीवासी अवध नवाबों के खजांची
कश्मीरीमल, जिनकी हवेली अब भी प्रख्यात है, की माता के स्वर्गवासपर प्रा
पौराणिक महाश्मशान के चांडालों से श्मशान कर के सम्बन्ध में विवाद हो ग
फलतः लाला कश्मीरीमल ने तुरन्त वर्तमान मणिकर्णिका श्मशान की भूमि ल
और श्मशान कायम कर नये चांडालों को नियुक्त कर दिया। तत्कालीन काशीवा
के प्रत्येक जाति के शव के लिये पाँच पैसा सात पैसा का कर निर्धारित कर दि
जो आज भी काशी के प्राचीन निवासियों द्वारा उतना ही दिया जाता है।

रहा हरिश्चन्द्र घाट वाला श्मशान। वहाँ नगर के बाहर प्राचीनकाल से
चांडालों की बस्ती रहने के कारण धीरे-धीरे यह नाम ग्रहण कर उसने श्मश
रूप पकड़ लिया है।

बाबा कीनाराम

काशी से पूर्वोत्तर गंगा के दाहिने तटपर स्थित रामगढ़ नामक गाँव में ठाकुर अकबरसिंह एक मामूली गृहस्थ थे। उनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए—गयन्द, जसन्त और कीना। कीना परिवार में सबसे छोटा था। परिवार के लोग उसका अधिक लाड-चाव करते थे। उसकी प्रवृत्ति बचपन से ही साधु बनने की ओर थी। पिता ने उसकी इस मनोवृत्ति को देख कर बारह वर्ष की ही अवस्था में उसकी शादी निश्चित कर दी। बालक कीना ने बहुत आनाकानी की किन्तु किसी ने नहीं माना। १५ वर्ष की अवस्था में गौना भी निश्चित हो गया। गौना लेने जाने के एक दिन पहले उसने अपनी माँ से दूध भात खाने को माँगा। माँ ने मना किया और दही भात खाने को कहा। क्योंकि दही भात खाना शुभ माना जाता है। दूध भात खाने की विधि शवसंस्कार के बाद की जाती है। पर वह अड़ा रहा। और उसने दूध भात खाया ही। दूसरे ही दिन समाचार मिला कि बालक कीनाराम की स्त्री का देहान्त हो गया। कीनाराम इस घटना को पहले ही जान गया था। कुछ दिनों तक वह घर में रहा। पर अन्त में वह बालक सन्तों की टोली में चला गया। वह पहले गाजीपुर गये और महात्मा शिवारामजी के शरण में गये। थोड़े दिन वहाँ के वातावरण से परिचित होने के बाद उन्होंने महात्मा से दीक्षा देने का अनुरोध किया। पहले तो उन्होंने उसकी परीक्षा ली और बाद में कहा, कल मैं गंगा स्नान को चलूँगा और वहीं पर तुम्हें उपदेश दूँगा।

दूसरे दिन बाबा कीनाराम दौड़ा दौड़ा आगे बढ़ गया और गंगा में उतर कर प्रार्थना करने लगा। यह देख कर महात्मा शिवारामजी बहुत प्रसन्न हुए और उसे विधिपूर्वक वैष्णव धर्म की दीक्षा दी। दीक्षा प्राप्त करने के बाद बाबा कीनाराम अपने गुरु के साथ ही अपने स्थान पर रहने लगे।

संयोगवश कीनाराम की गुरु—पत्नी का देहान्त हो गया। गुरुजी ने दू विवाह करने की इच्छा प्रकट की। कीनाराम ने इसका विरोध किया और क कि यदि आप दूसरा विवाह करेंगे तो मैं दूसरा गुरु कर लूँगा। इस पर व विवाद होने पर कीनाराम वहाँ से चल पड़े। रास्ते में एक ओर एक बुढ़ि बैठी रो रही थी। बाबा ने उससे रोने का कारण पूछा बुढ़िया ने बतलाया लगान की अदायगी न होने से जमींदार ने उसके बच्चे को पकड़ लिया है बाबा उस बुढ़िया को लेकर जमींदार के घर गये। वहाँ बुढ़िया के बच्चेपर म पड़ रही थी और उसे धूप में बैठाकर दण्ड दिया जा रहा था। बाबा कीनार ने जमींदार से बुढ़िया के बच्चे को छोड़ देने को कहा मगर जमींदार ने माना। तब कीनाराम ने जमींदार से कहा कि बुढ़िया का बेटा जहाँ धूप में है की जमीन खोदकर अपना रुपया ले लो। इसपर उस स्थानपर फावड़ा ल ही रुपयों का ढेर दिखाई दिया, बाबा की बात सच निकली। जमींदार ने उ पैरोंपर गिर कर क्षमा माँगी। और बुढ़िया ने अपने लड़के को बाबा के ह कर दिया। यही लड़का आगे चलकर प्रिय शिष्य बीजाराम के नाम प्रसिद्ध हुआ।

बीजाराम को साथ लिये वे हरिहरपुर पहुँचे। वहाँ गोमती के मनोरम पर आपने रामशाला की स्थापना की। कुछ दिनों तक घूमते फिरते पुनः अ जन्मभूमि रामगढ़ वापस आ गये। पीपल के नीचे छोटी झोपड़ी लगाकर बा भजन करने लगे। ६५ वर्ष तक की अवस्था तक अपने वैष्णव धर्म के अ भगवत भजन में अपना समय व्यतीत किया किन्तु दूसरे गुरु की बराबर बनी रही।

कुछ दिनों के बाद कीनारामजी दक्षिण यात्रापर गये और गुजरा उनकी भेंट अघोर मत के समर्थक महात्मा दत्तात्रेयजी से हुई। वहाँ काशी के कृमिकुण्ड के बाबा कालूराम दीक्षित होने के लिये गये थे। दीक्ष उपरान्त दत्तात्रेयजी ने कालूराम को एक सोटा दिया था और उनसे कहा कि इस सोटे के निमित्त यदि कोई यहाँ से जाय तो उसे यह सोटा दे दें इस विचित्र शक्ति-सम्पन्न सोटे को लेकर कालूराम काशी लौट आये थे।

बाबा कीनाराम ने भी दीक्षा लेने के लिये दत्तात्रयजी से निवेदन किया। उन्होंने उनकी परीक्षा ली और दीक्षा देकर तथा उनको पुरवा लंगोटा देकर बाबा कालूराम के यहाँ भेज दिया।

वे कई स्थानों पर घूमते हुए १८१४ में काशी में कालूराम के पास पहुँचे। केदारघाट पर बैठे हुए बाबा कालूराम मुर्दों की खोपड़ी बुलाकर सिद्धि जगा रहे थे। उसी समय एक मुर्दा बहता हुआ किनारे से आ लगा। बाबा कीनाराम ने प्रश्न किया, यह मुर्दा है या जिन्दा। बाबा कालूराम ने कहा यह तो मुर्दा है। बाबा कीनाराम ने अपनी सिद्धि प्रकट करने का अच्छा अवसर जानकर कहा राम-जियावन उठ, क्या सो रहा है। इस वाणी को सुनकर मुर्दा जीवित हो गया। कीनाराम ने उसे अपना शिष्य बना लिया। इस चमत्कार को देखकर बाबा कालू-राम को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन्होंने योग बल से जान लिया कि यह तो सिद्ध सन्त बाबा कीनाराम हैं।

कहा जाता है कि कालूराम ने बाबा कीनाराम की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने कहा, मुझे भूख लगी है। कुछ खाने को दीजिये। बाबा कीनाराम उनका अभिप्राय समझ गये और गंगा की ओर देखते हुए कहा कि गंगिया एक मछली दे जा। इतना कहना था कि एक मछली उनके आगे आ गिरी। कीनाराम ने उसे उठा लिया और भूनकर कालूराम को खाने को दिया। इस प्रकार परीक्षा लेकर कालूराम ने दत्तात्रय प्रदत्त सोटा कीनाराम को दे दिया।

सिद्धियों के चमत्कार

बाबा कीनाराम की सिद्धियों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक बार वे भीखा साहब से मिलने भुरकुरा गये। उनसे आपने दुधुआ (शराब) मांगा। भीखा साहब ने कहा यहाँ मदिरा का क्या काम है। भीखा साहब के यहाँ भंडारा था। बड़े-बड़े कंडालों और पीपों में पीने के लिए जल रखा था। बाबा कीनाराम ने कहा जावो देखो सब दुधुआ ही दुधुआ है। सचमुच लोगों ने देखा सारा पानी शराब बन गया था।

बाबा कीनाराम जब गिरनार से लौट रहे थे, रास्ते में उन्हें सिपाहि पकड़ लिया और अपने बादशाह के पास ले गये। बादशाह ने इन्हें सा साधु समझ कर उनसे चक्की पिसवाने का आदेश दिया। साधुओं के प्रति व ही दुराचरण करता था। बाबा कीनाराम और बीजाराम जेल भेज दिये तथा उन्हें चक्की पीसने को कहा गया। कीनाराम ने कहा—ओ पत्थर की च रोज तो तू चलाने से चलती है आज थोड़ा सा अपने से चल। इतना कहना कि चक्की अपने से चलने लगी। सिपाही देखकर दंग रह गये। यह खबर बाद तक पहुँची। बाबा कीनाराम को उसने कारागार से मुक्त कर दिया। कीनारामने कहा जा दुष्ट जब तक यह अनाज रहेगा तभी तक तेरा राज और ऐसा ही हुआ।

एक बार का जिक्र है कि वे सैदपुर गये। एक खोंमचे वाला सड़क के खोंमचा लगाकर रेवड़ी बेच रहा था। कीनाराम ने उससे रेवड़ी खिलाने को वह आदमी बहुत गरीब था किन्तु बड़े प्रेम से उसने कहा लो बाबा खाओ ढेर सी रेवड़ी उनके आगे रख दी। खाकर कीनाराम ने संतुष्ट होकर कहा बेटा नाम क्या है। दिपुआ, खोंमचेवाले ने उत्तर दिया। बाबा ने कहा जाओ तेरा नाम दीपचन्द्र हो जायगा। उसी दिन से उस खोंमचेवाले का वैभव दिन बढ़ने लगा। आज भी दीपचन्द्र का बनवाया हुआ विशाल मन्दिर के मन्दिरों की याद दिलाता हुआ सैदपुर में स्थित है जिसका कलश आका भेदता हुआ दूर से दिखाई पड़ता है।

सुना जाता है कि जब मन्दिर लगभग बनकर तैयार हो गया था तो की घूमते फिर इधर आये। पूछा यह किसका मन्दिर बन रहा है। लोगों ने बाबू दीपचन्द्र का। कीनाराम ने कहा उनको मेरे पास भेज दो। दीपचन्द्र आदमी हो गया था। आने में देर हुई। कीनाराम ने कहा जा तू फिर ही हो जायगा।

एक बढ़ई ने जिसे बाबा के आशीर्वाद से पुत्र पैदा हुआ था, एक बना कर दी। उसने खड़ाऊँ में चाँदी के घुघरू लगा दिये थे। उसे पहनक

गंगापार जा रहे थे। महाराज चेतसिंह ने यह देखकर कहा, भला साधु सन्तों को घुंघरू की क्या आवश्यकता। कीनाराम ने कहा आप ऐसे व्यक्तियों को राज्य की क्या आवश्यकता। उपरान्त जो ऐतिहासिक परिवर्तन हुए उसको सब जानते हैं।

काशी के भदैनी मुहल्ले में कृमिकुंड के पास आज भी कीनाराम की गद्दी है। इसके अतिरिक्त रामगढ़, हरिहरपुर, जौनपुर तथा देवल गाजीपुर में भी उनकी गद्दियाँ हैं। बाबा कीनाराम की मृत्यु सम्वत् १८३६ वि० में हुई।

काशी का संक्षिप्त इतिहास

विश्व के सभी प्राचीनतम नगर भूमिसात् हो गये। आज उनके वैभव[illegible] कहानीमात्र ही शेष रह गयी है। परन्तु भगवान विश्वनाथ द्वारा सुरक्षित [illegible] प्राचीन नगरी पवित्र गंगातट पर पूर्ववत् विद्यमान है।

काशी की स्थापना कब हुई। इस विषय में निश्चित रूपसे कुछ क[illegible] कठिन है। परन्तु पौराणिक इति-वृत्तों के आधार पर यह जान पड़ता है कि[illegible] नगरी प्रायः चार सहस्र वर्षों का इतिहास अपने अंचल में छिपाये खड़ी [illegible] अनुश्रुतियों से ज्ञात है कि त्रेतायुग में राजा सुहोत्र के पौत्र काश्य या काशि[illegible] ने काशी नगर की स्थापना की और उनके प्रपौत्र वेलुभान ने इसे राजधानी[illegible] गौरव प्रदान किया। इसी काल में हैहयों के विरुद्ध काशी का दीर्घकालीन सं[illegible] छिड़ा और उनसे राजधानी की रक्षा के लिये काशी के एतद्वंशीय [illegible] दिवोदास ने इसे दुर्ग के रूपमें परिणत किया। दिवोदास के पुत्र ने हैहयों[illegible] हराया। इस प्रकार सुहोत्र के वंशजों ने २४ पीढ़ी या प्रायः पाँच सौ वर्षों [illegible] राज किया। इस वंश के बाद पुनः हैहयों का इसपर अधिकार हुआ जिनका शा[illegible] काल अधिक विस्तृत जान पड़ता है। निःसंदेह रामायण और महाभारत काल[illegible] काशी नगरी देश के प्रमुख नगरों एवं राज्यों में रही। वाल्मीकि रामाय[illegible] ज्ञात होता है कि तत्कालीन काशी नरेश अयोध्या के महाराज दशरथ के मित्र [illegible] तथा स्निग्ध कोमल स्वभाव के मधुरभाषी सदाचारी एवं देवतुल्य थे। महाभा[illegible] में भी काशीराज का उल्लेख है। कृष्ण के गुरु संदीपनी काशीनिवासी ही [illegible] कृष्ण ने कुछ कारणों से अप्रसन्न होकर काशी पर आक्रमण भी किया [illegible] इतिहास पुराण एवं महाभारत के सुप्रसिद्ध प्रणेता महर्षि वेदव्यास ने भी [illegible] जीवन के सान्ध्यकाल में सरस्वती तटवर्ती अपना आश्रम त्याग कर काशी[illegible] किया था। महाभारत से हमें यह भी पता चलता है कि काशी के वनिक[illegible] मणि तुलाधारने महर्षि जानजलिक को ज्ञान दान दिया था। परन्तु प्रा[illegible]

काशी के जाज्वल्यमान् नक्षत्र अजातशत्रु थे। उपनिषदों से विदित होता है कि महाराज अजातशत्रु अत्यधिक विद्याव्यसनी और ब्रह्मज्ञान के प्रकांड पंडित थे। जिनके शासनकाल में इस क्षेत्र में काशी का महत्व भी बहुत बढ़ गया था और ब्रह्मज्ञान के ख्यातिलब्ध महर्षि गार्ग्य बालाकी को भी उन्होंने ब्रह्मोपदेश दिया था। इस काल में ही काशी सर्वविद्या की राजधानी होने का गौरव प्राप्त कर चुकी थी।

काशी कोशल का संघर्ष

नवीं शताब्दी में काशी के राजा पार्श्व ने अपने ज्ञान व तपस्या के आधार पर तीर्थंकर की उपाधि प्राप्त की और वे जैन धर्म के प्रवर्तक बने। ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में काशी का सुप्रसिद्ध राजा ब्रह्मदत्त था जिसने काशी के गौरव में पर्याप्त अभिवृद्धि की। जातक में इसके सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ वर्णित हैं। इसके समय में काशी और इसके पड़ोसी कोशल का संघर्ष अत्यन्त तीव्र हो गया था। ब्रह्मदत्त ने कोशल नरेश दीघीति पर आक्रमण किया और अपनी विजय के उपरान्त उसने कोशल का राज्य दीघीति के पुत्र को पुनः वापस कर दिया था। इसके पश्चात् कोशल की बारी आयी और कोशल के राजा वंकदभसेन एवं कंस ने काशी पर आक्रमण किया। अन्तिम राजा कंस ने काशी पर अधिकार कर इसे कोशल में शामिल कर लिया। यही कारण है कि महात्मा गौतमबुद्ध के जीवन के पूर्व षोड़स महाजनपदों की सूची में तो काशी की गणना स्वतंत्र महाजनपद के रूप में मिलती है। परन्तु जीवनकाल की सूची में इस राज्य का नाम नहीं अंकित है। वास्तव में यहीं से काशी की स्वतन्त्र सत्ता का लोप हो गया। और बाद की शताब्दियों में यह नगर द्वितीय या तृतीय राजधानी के रूप में गौरवान्वित होता रहा।

मगध-साम्राज्य के रूप में

महात्मा गौतमबुद्ध के समकालीन कोशलनरेश प्रसेनजीतने अपनी बहन कोशलादेवी के विवाह के समय काशी के कुछ गाँव दहेज के रूप में मगध नरेश बिम्ब-

सार को दिये थे और बिम्बसार के मृत्यु के पश्चात् जब प्रसेनजीत ने उन्हें
ले लिया तो इन्हीं को लेकर बिम्बसार के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अजातशत्रु
प्रसेनजीत में पुनः युद्ध छिड़ा जिसकी परिणति मैत्री एवं मगध नरे
कोशलाधिप की कन्या वाजीरादेवी के साथ विवाह के रूप में हुई थी। अजा
की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर तत्कालीन राजतांत्रिक एवं प्रजातं
राज्यों ने उसके विरुद्ध एक संघ बनाया था जिसमें जैन ग्रन्थों के अनु
कोशल एवं काशी का भी नामोल्लेख हुआ है। इस संघर्ष में अजातशत्रु वि
हुआ था। अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों के काल में काशी मगध का एक
बना रहा और शैशुनागवंश के संस्थापक शिशुनग ने अपने पुत्र को वारा
का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। मौर्यों के काल में इस नगर पर मग
अधिकार पूर्ववत् बना रहा। मौर्यों के बाद ब्राह्मण प्रतिक्रान्ति के विधाता
और काडंवों का काशी पर शासन रहा।

धर्मचक्र प्रवर्तन

मगध साम्राज्य के उत्कर्ष के प्रारम्भ में भी काशी की औपनिषद का
चली आती हुई सांस्कृतिक महत्ता पूर्ववत बनी हुई थी। यही कारण है कि
गौतमने गया के समीप निरंजना के तट पर बुद्धत्व की प्राप्ति की। परन्तु उ
काशी के अंचल में स्थित सारनाथ में ही धर्मचक्र प्रवर्तन कर प्रेम और करु
सास्वत सरिता प्रवाहित की, जो तृष्णा से अभिभूत मानव को आज भी
प्रदान कर रही है। महात्माबुद्ध का यह विचार ठीक ही था कि आर्य संस्कृ
केन्द्र काशी के स्वीकृत होने पर उनके धर्म एवं विचारों का प्रचार अपे
सरल हो सकेगा।

प्रथम चार शताब्दी

ईसा की प्रथम शताब्दी में परमप्रतापी कुशाण सम्राट कनिष्क का ए
बनकर काशी में भी उसके साम्राज्य का पूर्वी प्रान्त था जिसकी
सारनाथ से प्राप्त उसके तीसरे वर्ष के एक अभिलेख से होती है। काशी ने

दीर्घकालीन इतिहास में प्रथम वार विदेशी सत्ता का अनुभव किया था। कुषाणों के वाद आर्यावर्तके ऐतिहासिक रंगमंच पर हल्का सा आवरण छा जाता है। परन्तु शीघ्र ही मध्यदेश में भारशिवों नागवंशी राजाओं का प्रभुत्व स्थापित हुआ और उन्होंने भी काशी के सांस्कृतिक गौरव को प्रधानता प्रदान की। उन्होंने वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के रूप में काशी की पावन भूमि पर ही गंगा तटपर एक दो नहीं, दस अश्वमेध यज्ञ किये जिसकी स्मृति काशी का प्रसिद्ध दशाश्वमेध घाट के रूप में आज भी सुरक्षित है। संभवतः काशी के अंचल में स्थित नगवा ग्राम इन्हीं नागवंशी राजाओं को याद दिलाती है। नागवंशी राजा शिव के परमभक्त थे। इसीसे उन्हें भारशिव भी कहते हैं। शिव की सास्वत नगरी शिवभक्तों के लिये स्वाभाविक रूप से परमपुनीत एवं प्यारी वन गयी थी।

गुप्तकाल

भारशिवों के वाद परमप्रतापी एवं शक्तिमान गुप्त सम्राटों के काल में काशी नगरी विद्या धर्म एवं राजनीतिका प्रमुख केन्द्र वनी रही। एक अश्वमेध के घोड़े की मूर्ति नगवा ग्राम से प्राप्त हुई है। जिसके विषय में विद्वानों का विचार है कि यह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य द्वारा किये गये अश्वमेध का स्मारक है। सारनाथ में गुप्तकालीन अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। वस्तुत; यह नगर इस काल के प्रमुख नगरों में था। और उज्जैनी अयोध्या के साथ यह भी गुप्तों की अन्य राजधानी के रूप में था, इसी काल में काशीनगर शिल्प एवं कला का प्रधान केन्द्र था। और सारनाथ में अभयमुद्रा में प्राप्त गौतम जी की मूर्ति शिल्पकला के सर्वोत्तम नमूने के रूप में वर्तमान है। गुप्तों के पश्चात् कन्नौज में मौखरियों की प्रधानता हुई और उन्होंने काशी पर भी अपना अधिकार जमाया। सम्राट हर्षवर्धन के काल में काशी अधीन राज्य था जिसके विषय में प्रसिद्ध चीनी यात्री यू-आन-च्यांगने इस प्रकार लिखा है......

काशीराज की परिधि सात सौ मील है। राजधानी की लम्बाई तीन मील से अधिक है और नगर बहुत घना बसा हुआ है। इसके निवासी हिन्दू हैं और शिव को पूजते हैं। नगर में सौ मन्दिर हैं जिनमें दस हजार भक्तों के रहने के

लिये स्थान है। बौद्धों के केवल तीस मठ हैं जिनमें कुल तीन हजार भिक्षु र
हैं। आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण में कन्नौज के राजा यशोवर्मन ने पुनः का
पर आधिपत्य स्थापित किया। परन्तु यह अधिकार अल्पकालीन ही रहा।

पाल और प्रतिहार सत्ता

आठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में प्रसिद्ध पालवंशी नरेश ने काशी
अपना अधिकार जमा लिया और कन्नौज के राजा चक्राउध को भी अपने रा
नीतिक प्रभावक्षेत्र में ले लिया। परन्तु शीघ्र ही जब कन्नौज पर प्रतिहारों
अधिकार हुआ तब उन्होंने काशो भी पालों से छीन ली। प्रायः डेढ़ शताब्
तक काशी पर प्रतिहारों का आधिपत्य बना रहा। प्रतिहारों के पराभव के पश्
काशी के राजनीतिक जीवन में पुनः उथल-पुथल आरम्भ हुआ और बिहार
पाल मध्यप्रदेश के कलचुरी तथा बुन्देलखंड के चंदेल समय समय पर काशी
स्वामी होते रहे हैं। यही कारण है कि ११ वीं शताब्दी के इन तीनों ही वंशों
अभिलेख काशी या सारनाथ में प्राप्त हुए हैं।

गहरवालों की राजधानी

इस चंचल राजनीति का अन्त कन्नौज के गहरवालों ने किया। और इ
राज्य के संस्थापक चन्द्रदेव के एक अभिलेख में काशी का विशेष रूप से उल्
हुआ है। तब से प्रायः एक शताब्दी से अधिक काल तक इस वंश का अधि
काशी पर बना रहा। गहरवालों ने काशो के सांस्कृतिक महत्व के अतिरि
उसके राजनीतिक महत्व को भी प्रधानता प्रदान की और इसे अपने राज्य
द्वितीय राजधानी के रूप में स्वीकार किया। वर्तमान राजघाट के ध्वंसाव
इसी वंश की कीर्ति के प्रतीक हैं। पूर्व में पालों और सेनों के दमन या आक्रम
को रोकने के लिये काशी में द्वितीय राजधानी स्थापित करना राजनीतिक दृ
कोण से सर्वथा उचित ही था। वस्तुतः काशी के साथ इस वंश का सम्ब
इतना अधिक घनिष्ट हो गया था कि तत्कालीन एवं अनुवर्ती मुसलमान इतिहा
कारों ने जयचन्द्र को काशी के राजा के नाम से ही पुकारा है। चन्देलों

समसामयिक अभिलेखों एवं गुजरात के अनेक ग्रन्थों में भी गहरवालों को काशी राज्य की संज्ञा प्रदान की गयी है। जयचन्द्र ने अपने पुत्र हरिश्चन्द्र का जातकर्म संस्कार भी काशी में ही कराया था। जिसका उल्लेख उसके एक दानपत्र में हुआ है।

धार्मिक महत्व

इस काल में भी काशी का धार्मिक महत्व पूर्ववत् बना रहा। दूसरे राज्यों के नरेश भी काशी में तीर्थाटन एवं दान के निमित्त आया करते थे। ११वीं शताब्दी में चंदेल नरेश और गुजरात का चालुक्यवंशी राजा चामुंडराज तथा १२वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में चंदेलवंशी राजा परमादिदेव आदि पुण्यलाभ के लिये काशी आये। इन राजाओं के अतिरिक्त महात्माओं और सन्तों, गृहस्थों एवं सन्यासियों के लिये काशी का माहात्म्य और भी अधिक था क्योंकि देश में चिरकाल से यह प्रथा चली आ रही थी कि काशी में मरने से साक्षात मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसकी परम्परा आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। और भारत के कोने-कोने से प्रतिवर्ष सहस्रों नरनारी इसके निमित्त काशी आया करते हैं।

मुसलमानों के आरम्भिक आक्रमण

भारत के भीतरी प्रान्तों एवं नगरों पर आक्रमण करने वाले यमनीतुर्क सुल्तान महमूद गजनवी है। परन्तु वह काशी तक नहीं पहुँच सका था। उसकी मौत के बाद सन् ११३३ में लाहौर के प्रान्तीय शासक नियाल्तगीन ने सर्वप्रथम काशी को अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया। यह महात्वाकांक्षी व्यक्ति था। जो सम्भवतः भारत के लूट से प्राप्त धन की सहायता से स्वतन्त्र शासक होना चाहता था। वह गंगा के बाएँ किनारे से होता हुआ सीधा काशी पहुँचा। देश में केन्द्रीय शक्ति के अभाव के कारण उसका सफल प्रतिरोध नहीं हो सका। उस समय काशी मध्यप्रदेश के कलचुरी राजा गांगेयदेव के अधीन था। मुसलमान इतिहासकारों से ज्ञात होता है कि काशी में मुसलिम सेना प्रातः से दोपहर तक ठहरी और नगर को लूटने के बाद वापस हो गयी क्योंकि अधिक देर ठहरने में खतरा

था। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज गोविन्दचन्द्र के शासनकाल में काशी पर तुर्कों के आक्रमण का भय उत्पन्न हो गया था क्योंकि सारनाथ के एक अभिलेख में कहा गया है कि शिव ने गोविन्दचन्द्र को तुर्कों से काशी की रक्षा के लिये नि[illegible] के रूप में नियुक्त किया था।

काशी पर दूसरा सफल तुर्क आक्रमण साहबउद्दीन गोरी का हुआ। इन्होंने काशी के राजा जयचन्द्र को सन् ११९४ में चंदवा के युद्ध में पराजित किया। जयचन्द्र युद्ध-भूमि में मारा गया। और सुल्तान ने आगे बढ़कर वाराणसी को बुरी तरह लूटा और उसने सहस्रों मन्दिरों को धराशाही कर उनके स्थान पर मसजिदें बनवाई। उसने इस लूट में बहुत धन प्राप्त किया और लौटते समय उसने वाराणसी में अपना एक हाकिम भी नियुक्त किया। परन्तु उसका यह प्रबन्ध स्थायी नहीं हो सका और विजयचन्द्र नाम के एक व्यक्ति ने काशी मिरजापुर आदि भूभागों पर पुनः अधिकार स्थापित कर लिया।

दिल्ली सल्तनत का अधिकार

सुल्तान साहबउद्दीन गोरी के मौत के बाद कुतुबउद्दीन ऐबक भारत साम्राज्य का स्वामी हुआ और उसने शीघ्र ही साम्राज्य के संघटन का कार्य प्रारम्भ किया। इसी-समय से काशी के राजनीतिक महत्व की समाप्ति हो गई और मुसलिम शासनकाल में काशी को प्रान्त या प्रान्तीय राज्य की राजधानी होने का भी गौरव प्राप्त नहीं हो सका। अवश्य ही सुल्तान समशुद्दीन इल्तुतमिश के काल में काशी की गणना एक प्रान्त के रूपमें है। परन्तु उसके बाद काशी अवध या जौनपुर के प्रान्त के रूपमें ही रहा। खिजली सुल्तानों का अधिकार काशी पर बना रहा। तुगलक साम्राज्य के पतन के प्रारम्भिक काल में साम्राज्य के पूर्वी प्रान्त का अधीक्षक ख्वाजाजहाँ नियुक्त किया गया। उसके इस प्रान्त में काशी का भूभाग भी सम्मिलित था।

जौनपुर राज्य की अधीनता में

ख्वाजाजहाँ के मौत के बाद उसके पुत्र मलिक मुबारक ने सन् १३९९ ई० में मुबारकशाह सुल्तान की उपाधि धारण की और जौनपुर को अपनी राजधानी

बनाया। काशी का भूखण्ड जौनपुर की सर्की सल्तनत के अधीन आया। जौनपुर की सर्की सुल्तान हुसेनशाह को पराजित कर वहलोल लोदी ने जौनपुर पर अधिकार कर लिया और वाराणसी पुनः दिल्ली के सल्तनत के अधीन हो गया। सुल्तान का पुत्र वार्वकशाह जौनपुर का हाकिम नियुक्त हुआ। सुल्तान वहलोल लोदी के मौत के बाद वार्वकशाह ने अपने को जौनपुर का सुल्तान घोषित किया। परन्तु सिकन्दरशाह ने उसे पराजित कर पुनः जौनपुर का हाकिम रहने दिया। इधर सर्की सुल्तान हुसेनशाह अवसर के बाट में था। उसने इस प्रान्त के जमींदारों एवं स्थानीय शासकों को विद्रोह के लिये भड़काया और जौनपुर में विद्रोह हो गया। सुल्तान शीघ्र ही सेना के साथ आ गया और राजपूतों तथा भट्टनरेश भेद्चन्द्र के सशक्त विद्रोह को शान्त कराने में लग गया। विद्रोह पूर्णरूप से शान्त होने पर सुल्तान जौनपुर से दिल्ली चला गया।

मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत

सन् १५२६ ई० में सुल्तान इब्राहीमलोदी की पराजय एवं मृत्यु के उपरान्त बाबर दिल्ली का बादशाह हुआ। उसने शीघ्र ही अफगानों को पराजित कर जौनपुर तथा गाजीपुर के इलाकों पर अधिकार कर लिया और काशी में अपना एक हाकिम तैनात किया। परन्तु राणासांगा और बाबर की लड़ाई से लाभ उठाकर अफगानों ने पुनः इस प्रान्त को हथिया लिया। जब सन् १५२८ ई० में बाबर ने इस प्रान्तपर आक्रमण किया तो अफगानों ने चुनार का भी घेरा उठा लिया और काशी छोड़कर भी भाग निकले। बाबर के मौत के बाद जब हुमायूँ बादशाह हुआ तो अफगानों ने शेरखाँ के नेतृत्व में पुनः विद्रोह कर दिया। हुमायूँ ने चुनार के किले पर घेरा डाला और चार माह बाद शेरखाँ के सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार कर घेरा उठा लिया और आगरे लौट गया। कुछ ही वर्षों बाद शेरखाँ ने पुनः जौनपुर प्रान्तपर अधिकार कर लिया। हुमायूँ ने उसे चुनार के किले में घेर रखा और उसके द्वारा सन्धि का प्रस्ताव करने पर बादशाह बंगाल की ओर चला गया। इस बीच शेरखाँ ने काशी पर घेरा डाला और वहाँ के मुगल हाकिम मीर फजली को मारकर उसपर अधिकार कर लिया। बंगाल से

लौटती बार शेरखाँ ने हुमायूँपर आक्रमण किया और दो युद्धों में पराजित हो पर हुमायूँ भारत छोड़ ईरान भाग गया और कुछ समय के लिये काशी सुल्तानों का अधिकार हुआ।

अकबर के शासनकाल में जौनपुर और वाराणसी का हाकिम अलीकुली नियुक्त हुआ जिसने कालान्तर में स्वयं विद्रोह का झंडा खड़ा किया। अकबर स्वयं जौनपुर एवं वाराणसी आया, शान्ति स्थापित की। उसके लौटनेपर फिर विद्रो प्रारम्भ हुआ। विद्रोहियों ने वाराणसी पर अधिकार कर लिया। वाराणसी ने भी विद्रोहियों का साथ दिया। इसी कारण यह अकबर का कोपभाजन बना बादशाह ने नगर को लूटा और विद्रोहियों का दमन किया। तबसे वाराणसी शान्ति रही और अकबर के धर्मनिरपेक्ष राज्य में इस नगर की उन्नति होती रही वाराणसी और जौनपुर दोनों ही इलाहाबाद के प्रान्त में शामिल कर दिये गये इस प्रकार वाराणसी आठ महालों का एक सरकार मात्र रह गया।

जहाँगीर के काल में जब शाहजादा खुर्रम ने विद्रोह किया था तो द को जाते समय वह वाराणसी में भी रुका था। बादशाह होनेपर शाहजहाँ वाराणसी के अनेक मन्दिरों का विध्वंस कराया था। उत्तराधिकार के युद्ध में बंगाल के प्रान्तीय शासक सुजाने, जो शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र था, अ बादशाह होने की घोषणा की और वाराणसी तक चढ़ आया। परन्तु महारा जयसिंह तथा सुलेमान शिकोह से पराजित होकर वापस लौट गया। अपने दू प्रयत्न में वह पुनः वाराणसी आया और यहाँ से कई लाख रुपया वसूल किया उसकी पराजय के बाद औरंगजेब का शासन दृढ़ हुआ। वाराणसी उ धर्मान्ध नीति का कोपभाजन बना। और उसने यहाँ के अनेक मन्दिर तोड़क उनके स्थानपर मसजिदें बनवाईं। जिनकी स्मृति चौखम्बा मसजिद, लाट मसजिद, ढाई कंगूरा मसजिद, आलमगीरी मसजिद तथा ज्ञानवापी और बेनीमा की मसजिदों में सुरक्षित है। उसने काशी का नाम बदलकर मुहम्मदाबाद रखा परन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हो सका। मुगलकाल में वाराणसी में ए टकसाल घर भी था।

औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह तथा पौत्र जहाँदारशाह के समय में वाराणसी के सम्बन्ध में कोई विशेष घटना नहीं हुई परन्तु जब फर्रुखसियर ने दिल्ली पर चढ़ाई की तब उसकी सेना वाराणसी होती हुई गयी और उसने इस नगर से एक लाख रुपये लिये।

मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के शासनकाल में मुर्तजाखाँ नामक एक सरदार को वाराणसी जौनपुर तथा चुनार के चार सरकार जागीर के रूप में दिये गये। जिसे उसने मीररुस्तम अली नामक व्यक्ति को पाँच लाख रुपये वार्षिक के ठीकेपर दे दिया। बाद में यह रकम बढ़ाकर आठ लाख कर दी गयी। और मीररुस्तम अली इस पदपर सन् १७३८ ई० तक बना रहा।

डाक्टर रामवृक्ष सिंह के १७:२:५७ के 'आज' में प्रकाशित लेख से।

काशीराज्य

उमाशंकर सिंह

मीर रुस्तमअली के यहां काशी क्षेत्र के श्रीमंसाराम नौकर थे। यही मं-राम विलीन काशीराज्य के संस्थापक थे।

श्रीमंसाराम का जन्म एक भूमिहार जमींदार के घर कसवार परगनेमें का- दस मील दक्षिण पियरिया ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीमनोरं- सिंह था। इनके तीन और भाई थे। दशाराम, दयाराम और मायाराम।

श्रीमंसाराम अपनी कार्यपटुता के कारण कुछ ही दिनों में रुस्तमअ- के विश्वासपात्र बन गये। उस समय कुछ लोग मीर रुस्तमअली के विरोध नवाब सआदतअली खां के कान भरते थे। तहसील का रुपया भी समयपर न पहुँचा पा रहा था। अतः नवाब ने रुष्ट होकर अपने नायक सफदरजंग १७३८ में रुस्तमअली से रुपया लेने के लिये भेजा। नायब का पड़ाव जौनपुर पड़ा। रुस्तमअली पकड़ा गया और उसने अपना प्रतिनिधित्व करने के लि- अपने विश्वासपात्र नौकर मंसाराम को जौनपुर भेजा। प्रतिनिधि के वा- चातुर्यसे नायब का क्रोध बहुत कुछ जाता रहा। किन्तु उसी समय श्रीमंसा- के विरोधियों ने उनकी शिकायत रुस्तमअली से की—मंसाराम आपका हि- नहीं बल्कि शत्रु है। इसका जोरदार प्रभाव मीरपर पड़ा। एवं तत्काल ही उ- दूसरा प्रतिनिधि भेजा। इसी बीच मंसाराम के हितैषियों ने उन्हें इस बात खबर कर दी। मंसाराम पशोपेश में पड़ गये। उनको बहुत ठेस लगी। उ- एक नया प्रस्ताव नायब के सामने रखा और सम्प्रति उसकी स्वीकृत भी मिल गयी। मंसारामने तेरह लाख रुपया वार्षिकपर वाराणसी जौनपुर चुनार के परगनों को अपने पुत्र बलवन्त सिंह के नाम लिखा लिया। वाराणसी की कोतवाली और जौनपुर का किला, वाराणसी की टकसाल इनके

में नहीं रही। गाजीपुर के परगने शेख अब्दुल्लाने तीन लाख रुपये वार्षिक पर लिये।

समाचार पाकर रुस्तमअली भाग गये। मंसारामने धूमके साथ वाराणसी में प्रवेश किया। आधुनिक काशीराज्यका शिलान्यास तो उन्होंने किया किन्तु सम्बर्द्धनके लिये वे जीवित नहीं रह सके। एक ही वर्ष के पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई।

मन्सारामने राज्य की नींव तो डाली किन्तु उसके विस्तार और उन्नति का श्रेय राजा बलवन्तसिंह को था। राजा बलवन्तसिंह ने सर्वप्रथम इलाहाबाद के सूबेदार अमीर खां के द्वारा अपना एक आदमी दिल्ली भेजकर बादशाह मुहम्मद-शाह को नजर भेंट की। बादशाह ने बलवन्तसिंह को राजा की उपाधि प्रदान की तथा तीन जिलोंपर उनके अधिकार के लिये अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। राजा बलवन्तसिंहने अपने गाँव का नाम बदलकर गंगापुर रखा तथा वहाँ पर एक किला बनवाना आरम्भ किया।

सन् १७५० ई० में रामनगर का किला उन्होंने बनवाया। मीरघाट पर स्थित रुस्तमअली के किले को तुड़वा कर वे सारा सामान ले गये और किला बन जाने पर रामनगर ही काशीराज्य की राजधानी बना।

राजा बलवन्तसिंहने बाद में विजयगढ़ अगौरी लतीफपुर के किलों पर अपना अधिकार कर लिया। भदोही तथा केरा मंगरौर भी काशी राज्यान्तरगत आ गये। राजाने जौनपुरके जमींदारों की सम्पत्ति छीन ली। राजा बलवन्तसिंह एक लाख रुपया देकर चुनार के किले पर भी अपना प्रभुत्व चाहते थे। यह समाचार पाकर नया नवाब शुदाउद्दौला सेना लेकर वाराणसी आ गया। राजासाहब सपरिवार लतीफपुर के किले में चले गये। नवाब रुष्ट हो गया। उसने गाजीपुर के फजलअली को राजा को पकड़ने के लिए आदेश दिया। राजाने नवाब को पाँच लाख रुपये की भेंट दी, तथा पाँच लाख रुपया वार्षिक मालगुजारी बढ़ा दी। नवाब पाँच लाख अधिक वार्षिक मालगुजारी स्वीकार कर पट्टा देकर वापस गये।

ठीक समयपर मालगुजारी न देने के कारण गाजीपुर के फजलअली को दंड देने के लिये नवाबने अपने नायब की सेना के साथ भेजा। राजा बलवन्तसिंह

को भी सहायता करने का आदेश हुआ। १७५७ में आजमगढ़पर आक्रमण हुआ। फजलअली गाजीपुर होता पटना भाग गया।

राजा बलवन्तसिंह वास्तव में पराक्रमी तथा दूरदर्शी थे। उन्होंने समझ लिया कि अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाना व्यर्थ है। अंग्रेजों के विरोध में किसी राज्य का टिकना असंभव था। आदेशानुसार राजा बलवन्तसिंह भी बक्सर तक गये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बक्सर के युद्ध का क्या परिणाम देशपर पड़ा।

राजासाहब की दयालुता प्रख्यात थी। रामनगर किले के निर्माण के समय राजासाहब का ध्यान एक लड़के की ओर आकृष्ट हुआ। राजासाहबने उसके विषयमें पूछताछ की। उसका नाम औसानसिंह था तथा वह उनका स्वजातीय था। राजसाहबने तत्काल ही उसे अपने मां का नौकर बना दिया। बाद में चल कर औसानसिंह काशी राजके एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हुए। आज भी वाराणसी में उनके नामपर एक मुहल्ला बना हुआ है।

चेतसिंह

राजा बलवन्तसिंह जब वृद्ध हो गये और उनका अन्तिम समय निकट आ गया तब उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा। बलवन्तसिंह अपने भतीजे मनियार सिंह को गद्दी देना चाहते थे। किन्तु उनकी रानी अपने नाती महीपनारायण का पक्ष ले रही थीं और बलवन्त सिंह के प्रियपात्र रायगढ़ किले के कोतवाल औसानसिंह चेतसिंह का समर्थन कर रहे थे। अन्तमें औसानसिंह की ही बात मानी गयी। चेतसिंह गद्दी के उत्तराधिकारी घोषित किये गये।

बाहरी शत्रु

घरेलू शत्रुओं के अलावा चेतसिंह के बाहरी दुश्मन भी थे। उनमें अवध का नवाब सुजाउद्दौला प्रमुख था। चेतसिंह को अधिकार प्राप्त किये अभी कुछ ही वर्ष हुए थे कि अंग्रेजोंने दखल देना आरम्भ कर दिया।

सन् १७७५ में कम्पनी और अवधके नवाबमें एक नई सन्धि हुई जिसके अनुसार वाराणसी राज्य अवधसे निकालकर फिर कम्पनी के आधीन कर दिया गया। श्री फौक यहाँ विशेष प्रतिनिधि बनाकर भेज दिये गये। चेतसिंह को कम्पनी की ओर से सनद दी गयी। इसके अनुसार उन्हें स्वतन्त्र शासन और टकसाल में अपना रुपया ढालने का अधिकार दिया गया। कर में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की गयी और कदापि न बढ़ाने का वचन दिया गया। लेकिन अंग्रेज अपने कौलपर कायम नहीं रहे। उन दिनों कम्पनी मराठों से लड़ रही थी। खर्च अधिक पड़ रहा था। इसकी पूर्ति के लिये वारेन हेस्टिंग्स की नजर चेतसिंह पर पड़ी। हेस्टिंग्स चेतसिंह से नाराज भी था। उसने बदला लेने का अच्छा मौका देखा। सन् १७७८ में चेतसिंह से तीन पल्टन का खर्च पाँच लाख रुपया युद्धकाल तक प्रतिवर्ष देने की माँग की गयी। इसपर चेतसिंह ने लिखा कि इतना रुपया इस समय देना कठिन है। फिर भी एक साल के लिये मैं इतनी रकम देना स्वीकार करता हूँ। किन्तु एक साथ नहीं कई किश्तों में। यह उत्तर मिलते ही हेस्टिंग्स क्रुद्ध हो गया। उसने पाँच दिनों में रुपया जमा करनेकी आज्ञा दी। चेतसिंहने रुपया जमा कर दिया। दूसरे साल उसने फिर पाँच लाख की माँग की। इसका कारण इतिहास लेखक मेकाले ने यह बतलाया है कि योजना यह थी कि बराबर अधिकाधिक रुपया माँगा जाय, यहाँ तक कि उन्हें उज्र करना पड़े, फिर उज्र को अपराध बनाकर उन्हें दण्ड दिया जाय और उनकी सारी जायदाद जब्त कर ली जाय। हुआ भी कुछ इसी प्रकार। चेतसिंह ने असमर्थता प्रकट की लेकिन उनकी एक भी नहीं सुनी गयी। वसूली के लिये फौज रवाना कर दी गयी, सेना आने के पहले ही उन्होंने रुपया जमा कर दिया। लेकिन हरजाने के रूप में उनसे दो हजार और वसूल किया गया। तीसरे साल १७८० में फिर पाँच लाख रुपयों की माँग की गयी। चेतसिंह ने दो लाख रुपया हेस्टिंग्स को भेंट भेजा लेकिन हेस्टिंग नहीं पिघला। रुपया तो उसने दबा लिया और पाँच लाख की माँग कायम रही। चेतसिंह को तो यह रकम देनी ही पड़ी इसके अलावा दस हजार पौंड फौज का हरजाना भी देना पड़ा। हेस्टिंग्स का दबाव बराबर बढ़ता ही गया। अन्त में यह सब कुछ आदमियों को

लेकर १४ अगस्त १७८१ को काशी आ धमका। वह उनके विरुद्ध काररवाई करने की मन में ठानकर चला था। यहाँ वह 'आज' कार्यालय के सामने बाग माधोदास में ठहरा। यहाँ चेतसिंह के विरोधी औसानसिंह आदि ने उसका खूब कान भरा। हेस्टिंग्स की ओर से उसका सौदा होने लगा। एक लाख रुपया उनको, पन्द्रह लाख अन्य मुसाहिबों को, विजयगढ़ लतीफपुर पतीता और शक्तेशगढ़ के किले को कम्पनी को देने की बात होने लगी। चेतसिंह रुपया तो कुछ किश्तों में देने को तैयार हो गये। लेकिन किलों को देना स्वीकार नहीं किया। शिकार को रास्तेपर आया देख अब उसे घेरने की चेष्टा की गयी। चेतसिंह को धमकाने के लिये मार्का-हम के नेतृत्व में एक कम्पनी सेना शिवालय भेजी गयी। सिपाही बारादरी में घुस गये और राजा को पहरेमें ले लिया। वे शिवालय में ही हेस्टिंग्स के बन्दी हुए।

शिवालय का संग्राम

कैप्टेन स्टाकर दो कम्पनी सिपाही लेकर आये और राजा के पहरेदारों तथा अन्य व्यक्तियों को निःशस्त्र कर दिया। चेतसिंह के बन्दी होने की खबर बिजली की तरह काशी में फैल गयी। कुछ जनता ने शिवालय को घेर लिया। किन्तु राजा के आज्ञा बिना कुछ करने से हिचकती थी। बाबू मनियारसिंह, बाबू ननकूसिंह, बाबू अजायबसिह तथा कुछ और भूमिहार परिवार अपने को नहीं रोक सके। कम्पनी के सिपाहियों की परवाह किये बिना तलवार लेकर शिवालय में घुस गये, शिवालय का वातावरण क्षुब्ध था। हेस्टिंग्स के अन्याय से जनता क्रोध से उबल रही थी। कर्नल मार्कम की अधीनता में दो कम्पनी सेना और दो तोप भेजी गयी। शिवालय के पश्चिम की ओर राजा के कुल बरकनदाज खड़े थे। अंग्रेजी फौज को आगे बढ़ते देख उन्होंने उसे आगे बढ़ने से मना किया और कहा कि शिवालय में तीन कम्पनी सेना घुस चुकी और अब वहाँ जगह नहीं है। किन्तु इस पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। तब बरकनदाजों ने अन्तिम चेतावनी दी कि यदि अब एक कदम भी आगे बढ़े तो खैर नहीं। यह सुनते ही अंग्रेजी तोप छूटने लगी। बस फिर क्या था, बरकनदाजों ने एक साथ अपनी बन्दूकें दागी। पहली

बाढ़ में सेना का अफसर मारा गया। फिर बरकनदाजों ने बन्दूक फेंक तलवार निकालकर एक साथ ही अंग्रेजी फौजपर हमला कर दिया। इस संघर्ष में कम्पनी के बहुत से सैनिक खेत रहे।

चेतसिंह का पलायन

शिवालय के बाहर जब यह काण्ड हो रहा था उस समय राजा चेतसिंह पूजा पर बैठे थे। बाहर शोरगुल सुन उनके सरदारों और सन्तरियों ने कम्पनी के सिपाहियों से अपने हथियार छीन राजा को घेर कर खड़े हो गये। यह स्थिति देख हेस्टिंग्स के चोपदार चेतराम ने सूबेदारों को पुकारा और वे तलवार लेकर राजा की ओर दौड़े। जो लोग रक्षा के लिये राजा को घेरे खड़े थे उन्होंने समझा कि कम्पनी के सरदार राजा को मारने आ रहे हैं। कम्पनी के सरदारों को राजा की ओर आते देख नन्हकूसिंह ने झपटकर पहले चेतराम और जैनुलआब्दीन को, जो पलंग के नीचे छिपना चाहते थे, मार डाला। कैप्टेन स्टाकर अपने एक सैनिक के साथ राजा को पकड़ने लपके। लेकिन राजापर हाथ लगाने के पहले वे मौत के घाट उतार दिये गये। कम्पनी के कई सूबेदार और जमादार भी मारे गये। बाहर उपस्थित कुछ जनता और सिपाही शिवालय का फाटक तोड़कर भीतर घुस गये। फिर क्या था कम्पनी के सिपाही घास मूली की तरह काटे जाने लगे। पाँच कम्पनी लगभग ५०० में से थोड़े से सिपाही किसी प्रकार अपनी जान बचाकर हेस्टिंग्स के पास पहुँचे। पगड़ी के सहारे चेतसिंह खिड़की से कूदे और नाव से बड़ी गंगा को पार कर रामनगर पहुँचे। वहाँ से रुपया पैसा जेवर आदि ले लतीफपुर चले गये। किले की रक्षा के लिये सेना का प्रबन्ध कर दिया।

चेतसिंह के भागने का समाचार सुन कर हेस्टिंग्स ने रामनगर सेना भेजी। लेकिन उसको लोहे के चने चबाने पड़े। अन्त में वह वापस लौट कर चुनार भाग गया। मिरजापुर से एक दूसरी सेना की टुकड़ी रामनगर के लिए रवाना की गयी। यह रामनगर पहुँच कर वाराणसी नगर में भी घुस आयी। काशी की गलियों में इसको खूब मारा गया। इस कम्पनी का कप्तान और २४ अंग्रेज

सैनिक अफ़सर मारे गये तथा एक से सात देशी सैनिकों को भी जान से हाथ धोना पड़ा। ७२ सैनिक घायल हुए। गुप्तचर हेस्टिंग्स की हालत समझने को भेजे गये। इसकी खबर हेस्टिंग्स को भी लग गयी। अब वह बहुत घबरा गया। और सारा सामान छोड़कर रातोरात चुनार भागा। उसकी घबराहट पर किसी काशीवासी ने यह तुकबन्दी की"घोड़े पर हौदा हाथी पर जीन, ऐसा भागा वारेन हेस्टिंग्स। बलवन्तनामे में भी लिखा है"उस रात की कूँच में एक जुगनू भी दुश्मन को जलती दियासलाई सा प्रतीत होता था। और यदि दूर पर भी रोशनी दिखाई पड़ती थी तो अंग्रेजों पर आक्रमण करने वाले दल की मसालों का भय होता था और सब लोग पेड़ों और दरों के पीछे छिप जाते थे। यह थी हेस्टिंग्स की घबराहट। चेतसिंह को भाग कर दतिया राज में दूसरे के सहारे अपने अन्तिम दिन काटने पड़े। काशी में अब सरकार की ओर से बेनियाबाग में स्मारक बन गया है। वाराणसी राज की गद्दी गुलाब कुँवर के नाती महीपनारायण सिंह को मिली। लेकिन राज्य स्वतन्त्र नहीं रह कर जमींदारी मात्र रह गया।

वाराणसी शहर के विद्रोह को शान्त करने के लिए औसानसिंह को नायब बनाया गया। ऐसी स्थिति में हेस्टिंग्स को वाराणसी रुकना भय के बाहर नहीं था। अतः उसने चुनार के किले में पण्डित बेनीराम की सहायता से शरण ली।

चुनार से ही काशीराज के सभी किलों पर प्रायः ब्रिटिश कम्पनी का अधिकार हो गया। सितम्बर में पुनः लार्ड हेस्टिंग्स वाराणसी आया और राजा बलवन्तसिंह के दौहित्र महीपनारायणसिंह को गद्दी पर बैठाया। वार्षिक कर अब ४० लाख रुपये कर दिया गया। पण्डित बेनीराम को २५ हजार रुपया वार्षिक आय की जागीर मिली। कम्पनी की सरकार ने राजा महीपनारायण सिंह से दीवानी तथा फौजदारी के अधिकार भी ले लिये। महाराजा महीपनारायण सिंह के तीन पुत्र कुँवर उदितनारायण सिंह, दीपनारायण सिंह और प्रसिद्धनारायण सिंह थे। १७९५ में केवल ३८ वर्ष की अवस्था में राजा की मौत हो गयी।

कुँवर उदितनारायण सिंह अपने पिता के मौत के बाद राजा बने। इनको कोई पुत्र नहीं था। अतः उन्होंने अपने भाई प्रसिद्धनारायण के पुत्र कुँवर ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह को गोद लिया। राजा की मृत्यु १८३५ में हो गयी।

महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह अब काशी के राजा हुए। यह बड़े ही गुणग्राही तथा स्वयं बहुत गुणी थे। राज्यकार्य के पश्चात् इनका अधिक समय पूजापाठ में व्यतीत होता था। इन्होंने तुलसीकृत रामायण की एक टीका भी की थी। लार्ड लिंटन ने पहले दिल्ली के दरबार में इनकी प्रशंसा की थी। इन्हें तेरह तोपों की सलामी तथा महाराज की उपाधि मिली थी। इंग्लैण्ड में आक्सफोर्ड के पास इन्होंने भारतीय ढंग का एक कुँआ बनवाया। १८५७ के विद्रोह में महाराज बहादुर की उपाधि मिली थी। तारीख १३ जून १८८९ में ७१ वर्ष की अवस्था में महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह का स्वर्गवास हुआ।

इनकी मृत्यु के बाद नदेसर की कोठी में ३० जून १८८९ को एक दरबार किया गया। स्वर्गीय महाराज के कनिष्ठ सहोदर श्रीनरनारायणसिंह के पुत्र महाराज प्रभुनारायणसिंह को राज्याधिकार मिला। इनकी राज्योचित शिक्षा में स्वर्गीय महाराज ने कोई कोर कसर उठा नहीं रखी थी। १८७० में सूर्यपुर के रईस बाबू हरप्रसादसिंह की कन्या से कुँवर साहब का विवाह हुआ। उन्होंने अपना दूसरा विवाह भी किया। १८७४ में कुँवर साहब को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। महाराज प्रभुनारायणसिंह के काल में रामनगर की काफी उन्नति हुई। पुरानी इमारतों की मरम्मत हुई। स्कूल अस्पताल धर्मशाला गोशाला तथा सड़कें बनाई गयीं। १८९१ में इन्हें के० सी० आई० की उपाधि मिली। महाराज ने मथुरा की यात्रा कर अपने अपूर्व दान से, पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। पहली जनवरी १८९८ में इन्हें जी० सी० एस० आई० की दूसरी उपाधि ब्रिटिश सरकार ने दी। १९०२ में रामनगर की धर्मशाला बनवाई। उसी वर्ष नागरी प्रचारिणी सभा की नींव डाली तथा दो हजार रुपये उसकी सहायता की। १९१० में काशी का शिवालाघाट वाला महल पुनः सरकार को लाखों रुपया देकर ले लिया। और वहाँ के मन्दिरों का पुनः जीर्णोद्धार कराया। मुजफ्फरपुर के भूमिहार ब्राह्मण

कालेज को ५० हजार रुपये की सहायता दी। हिन्दू विश्वविद्यालय को इनका दान किसी से छिपा नहीं है। १९२१ में जी० सी० आई० ई० की उपाधि मिली। ४ अप्रैल १९११ को गवर्नर सर लेसली पोर्टर ने काशी में दरबार कर स्वतन्त्र शासक की सनद दी। १९३१ में महाराजा का देहान्त हो गया। उसके बाद महाराजा आदित्यनारायणसिंह बहादुर के० सी० एस० आई० गद्दी पर बैठे। इनको कोई पुत्र नहीं था। अतः इन्होंने २४ जून १९३३ को अपने ममेरे भाई के पुत्र कुँवर विभूतिनारायण सिंह को गोद लिया। काशीराज्य दान तथा धर्मपरायणता के लिए सदैव से विख्यात था। देश जब स्वतन्त्र हुआ तब नए प्रश्न आये। देश की एकता का प्रश्न सबसे प्रमुख था। महाराज विभूतिनारायण सिंह ने देश की आवश्यकता को समझ कर अपना राज्य १५ अक्टूबर १९४९ को भारत में विलीन कर दिया।

यह वाराणसी है

सिर्फ काशी नगर ही तीन लोक से न्यारी नहीं है, बल्कि यहाँ के लोग, उनका रहन-सहन, उनके आचार-विचार, यहाँ तक कि यहाँ की सरकारी गैर-सरकारी संस्थाएँ भी अपने ढंग की निराली हैं। उदाहरण के लिए वाराणसी नगरमहापालिकाको ही ले लीजिये। इस नगरी का निरालापन कोई मुफ्तमें न देख जाय, इस गरज से वह प्रत्येक यात्री से एक आना प्रवेश कर लेती है। जहाँ तक प्रवेशकर का सवाल है, हमें एतराज नहीं है, लेकिन महापालिका 'निकासी-कर' भी लेती है। कहने का मतलब यह कि अगर कोई बाहरी आदमी वाराणसी आये और आकर वापस चला जाय तो उसे दो आनेकी चपत पड़ जाती है। शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि घर के लोग अर्थात् खास वाराणसी के बाशिन्दे भी इस कर से मुक्त नहीं हैं। चूंकि यह कर रेलवे के माध्यम से लिया जाता है इसलिए हम आप नहीं जान पाते। काशी जैसी नगरी के लिए क्या यह नियम निरालेपन का द्योतक नहीं है?

सफाईपसन्द शहर

इस 'कर' की बाबत कहा जाता है कि यह इसलिए लिया जाता है कि तीर्थ-स्थान होने की वजह से यहाँ गन्दगी बहुत होती है। लिहाजा सफाईखर्च (बनाम जुर्माना) तीर्थ यात्री कर के रूप में लिया जाता है। वाराणसी कितना साफ सुथरा शहर है, इसका नमूना गली सड़कें तो पेश करती ही हैं, अखबारों के 'सम्पादक के नाम पत्र' वाले कालम भी 'प्रशंसाशब्दों' से रंगे रहते हैं। माननीय पण्डित नेहरू तथा 'स्वच्छ काशी आन्दोलन' के जन्मदाता आचार्य विनोबा भावे इस बात के गवाह हैं।

खुदा आबाद रखे देश के मन्त्रियों को जो गाहे-बगाहे कनछेदन, मुंडन, शादी और उद्घाटन के सिलसिले में वाराणसी चले आते हैं जिससे कुछ सफाई हो जाती है, नालियों में पानी और चूने का छिड़काव हो जाता है।

निराली भूमि

अगर आप कभी काशी नहीं आये हैं तो आपको लिखकर सारी बातें समझायी नहीं जा सकती। अगर आये हैं और इसका निरालापन नहीं देखा है तो यह आपके लिए दुर्भाग्य की बात है। शायद आप यह सवाल करें कि आखिर वाराणसी में इतना क्या निरालापन है जिसके लिए ढिंढोरा पीटा जा रहा है, तो अर्ज है—

विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी शून्य में स्थित है और वह सूर्य के चारों तरफ चक्कर काटती है। लेकिन इस तथ्य को भारतवासी नहीं मानते। उनका 'विज्ञान' यह कहता है कि 'पृथ्वी शेषनाग के फनपर स्थित है और स्वयं सूर्य उसके चारों ओर चक्कर काटता है। हमने कभी पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से सूरज उगते नहीं देखा। यह सब विज्ञान की बातें चण्डूखाने की गप्प हैं। एक बेपेंदी का लोटा जब बिना सहारे के इधर-उधर लुढ़कता है तब पृथ्वी जैसी भारी गोलाकार वस्तु (बकौल पश्चिमी विज्ञान) बिना किसी लाग (सहारे) के कैसे स्थिर रह सकती है?' बताइये, है कोई वैज्ञानिक, खगोलवेत्ता जो उत्तर देने का साहस करे?

वाराणसी वालों को दृढ़ विश्वास है—पृथ्वी शेष नाग के फनपर स्थित है पर उनकी वाराणसी भगवान् शंकर के त्रिशूलपर है। शेषनाग से उसका कोई मतलब नहीं। इसलिए काशी को तीन लोक से न्यारी कहा गया है। यहाँ गंगा उत्तर-वाहिनी है, कभी-कभी शंकर भगवान् जब आराम करने के लिए त्रिशूलपर पीठ टेक देते हैं तब यहाँ की जमीन कुछ हिल भी जाती है। अधिक दूर क्यों, काशी शंकर के त्रिशूलपर है या नहीं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यहाँ की भूमि की बनावट है।

अब आप त्रिशूल की कल्पना करें जिसमें तीन फल होते हैं। बीच वाला फल सबसे ऊंचा और दोनों ओर ढालुआ होता है। बाकी दोनों फल ऊपरी दिशा में मुड़े होते हैं। बीचवाला फल वर्तमान चौक—ज्ञानवापी है। प्राचीनकाल में काशी का महाश्मशान यहीं था। वर्तमान विश्वनाथ मन्दिर के निकट से गंगा

बहती थीं। शंकर का सबसे प्रिय स्थान श्मशान होने की वजह से उसे शीर्ष-स्थान दिया गया है। आज भी आधी रात के बाद शंकर के 'गण' इस स्थान के प्रसिद्ध कचौड़ीगली से मिठाई खरीदने आते हैं।

चौक के दोनों ओर भयंकर ढाल है। यह ढाल कितना भयंकर है, इसका अन्दाज रिक्शे की सवारी में अनुभव हो जाता है। दक्षिण का ढाल जंगमबाड़ी में और उत्तर का ढाल मैदागिन में जाकर समाप्त होता है। फिर दूसरी चढ़ाईवाला ढाल मछोदरी से राजघाट और उधर जंगमबाड़ी से भदैनी तक है। इसके बाद दोनों तरफ ढाल है। काशी के इस भूगोल को पढ़ने के पश्चात् अब आपको भी मानना पड़ेगा कि काशी शंकर के त्रिशूलपर अवश्य स्थित है। इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं।

काशी का निरालापन

यदि आप आज भी वाराणसी की खूबियों से अपरिचित हैं तो आइये, आज आपका परिचय उनसे करा दूँ। मुमकिन है आप ने इन दृश्यों को देखा हो पर इस गरज से न देखा हो कि यह सब भी वाराणसी की खूबियों में है। सुबहे में वाराणसी की काफी दाद दी जाती है, इसलिए जब कभी आप वाराणसी तशरीफ ले आयें तो इसका ध्यान रहे कि सुबह हो, शाम या रात नहीं।

स्टेशन से बाहर आते ही आपको दर्जनों जलपानगृह दिखाई देंगे। इन दूकानों में बनी सामग्री की सोंधी महक से आपका दिल दिमाग तर हो जायेगा। यहाँ से आप शहर की ओर ठीक नाक की सीध में चलें। दाहिने-बायें देखने की जरूरत नहीं है।

स्टेशन से एक फर्लांग आगे काशी विद्यापीठ है। यह वह संस्था है जहाँ के छात्र या तो नेता बनते हैं अथवा शासक। काशी विद्यापीठ बनाम नेता जन्मदाता पीठ। इसी के पीछे काशी का प्रसिद्ध कब्रगाह फातमान है जहाँ इतिहास के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध व्यक्ति चिर-निद्रा में सोये हुए हैं। पास ही भारत में अपने ढंग का अकेला मन्दिर भारतमाता का मन्दिर है। इसके निर्माता

हैं—स्वर्गीय दानवीर बाबू शिवप्रसाद गुप्त। मन्दिर की बगल में भगवानदास स्वाध्यायपीठ है। पुस्तकालय के ठीक सामने चन्दुवा की प्रसिद्ध सट्टी है। कुछ दूर आगे शरणार्थी बस्ती, बर्मियों का एक बौद्ध मन्दिर तथा वाराणसी में खेलकूद के लिए बनाया गया स्टेडियम है।

कुछ दूर आगे ईसाइयों का गिरजाघर है। प्राचीनकाल में यहाँ डाकू रहते थे जो राह चलते व्यक्तियों को कत्ल करके कुएँ में छोड़ देते थे। काशी का प्रसिद्ध मौत का कुआँ यहीं था। यहीं से दो रास्ते पूर्व और पश्चिम दिशा की ओर गये हैं। पश्चिमवाला रास्ता वार-वनिता की नगर की ओर तथा पूर्ववाला शहर की ओर गया है। पूर्ववाले रास्ते में वाराणसी का प्रसिद्ध 'आशिक-माशूक का कब्रगाह' है। वाराणसी प्रेमियों को यहीं से प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त होती है। यह वह ऐतिहासिक स्थान है, जिसके दर्शन बिना प्रेम अपुष्ट रहता है। इस स्थानपर कैथ के अनेक वृक्ष हैं। किंवदन्ती है, प्रत्येक वृक्ष से दो कैथ के फल प्रतिपदा के दिन नियमित नीचे गिरते हैं।

थोड़ी दूरपर औरंगजेब के शासनकाल में निर्मित सराय, पान का दरीबा है। मुहल्ला सिगरा के आगे भारत विख्यात् विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज का मकान है! ठीक इन्हीं के पीछे का स्थान 'छोटी गैबी' कहलाता है। जहाँ गुरु लोग रात बारह बजे तक नहाते निपटते हैं। पास ही रथयात्रा की प्रसिद्ध चौमुहानी है। यहाँ वर्ष में तीन दिन जन-समारोह होता है। काशी की लोक-कला के दर्शन सोरहिया तथा रथयात्रा के मेले में ही होते हैं। लक्सा की अधिकांश रामलीला यहीं होती है।

पास ही विश्वविख्यात थियोसोफिकल सोसाइटी है। यहाँ वाराणसी के बालक और बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। सोसाइटी के दक्षिण भाग में वैद्यनाथ और बटुकभैरव का मन्दिर है। इसी मन्दिर के समीप सेण्ट्रल हिन्दू कालेज बड़ी गैबी आदि प्रसिद्ध स्थान हैं।

कालेज से कुछ दूर आगे खोजवाँ बाजार है, नवाबों के खोजाओं के रहने के कारण मुहल्ला बस गया था। आजकल अबदाल की मण्डी है। पास ही शहर

को आलोकित करनेवाला तथा जलदान करनेवाला 'बिजलीघर' और 'पानीकल' है।

थोड़ा ही आगे बढ़नेपर अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अतिथिशाला दिखाई देगी। यहाँ संसार के ख्यातिप्राप्त राजनीतिज्ञ लोग आकर मेहमानवाजी करते हैं। वाराणसीवालों को अपनी इस कोठीपर नाज है जो संसारके महान पुरुषों को अपने यहाँ ठहराकर भारतीय संस्कृति का परिचय देती है। यह भवन है—महाराजकुमार विजयानगरम् यानी ईजानगर की कोठी।

यहाँ से कुछ दूर दुर्गाकुण्ड है जहाँ राम की सेनाएं ही नहीं, बल्कि पास ही सेनापति महोदय का भी भवन है। दुर्गाकुण्ड का मन्दिर रानीभवानी और वानर-सेनापति संकटमोचन का मन्दिर गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा स्थापित हुए हैं। संकटमोचन के मन्दिर में नित्य सुन्दरकाण्ड और हनुमान चालीसा के पाठ करनेवाले भक्तों की भीड़ लगी रहती है। खासकर परीक्षा के समय विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ जाती है। यूनिवर्सिटी के छात्रों का विश्वास है, 'संकटमोचन बाबा' बिना पढ़े-लिखे परीक्षा की वैतरणी पार करा देते हैं। छात्र-छात्राएँ परस्पर प्रेम के स्थायित्व की शपथ भी यहीं लेते हैं! यहाँ का दलबेसन बहुत गुणकारी प्रभावशाली होता है।

यह है—लंका। रावणवाला नहीं—काशी का अपना निजी। आगे भारत-प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था विश्वविद्यालय है। पास ही नगवा घाट है—जहाँ बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी है। यहीं पर एक बार स्वामी करपात्रीजी ने यज्ञ करवाया था।

यह है पुष्कर तीर्थ। इसके आगे अस्सी और कुरुक्षेत्र का तालाब है। सूर्यग्रहण के दिन इस तालाब में धर्मप्राण व्यक्ति स्नान के नाम पर कीच स्नान करते हैं। आगे भदैनी है, और बगल में तुलसीघाट। जहाँ तुलसीदास का खड़ाऊँ और उनके द्वारा स्थापित हनुमानजी का मन्दिर दर्शनीय है। वाराणसी का यह मुहल्ला साहित्यिकों का भी एक गढ़ है। सोलहवीं शताब्दी में यह स्थान काशी का बाहरी अंचल माना जाता था।

यह है हरिश्चन्द्रघाट। कुछ लोग इसे काशी का प्राचीन श्मशान मानते हैं, यह बात गलत है। पहले यहाँ डोमों की बस्ती थी। डोम लोग महाश्मशान में अपने परिवार की लाश नहीं जला पाते थे। यह लोग अपने को राजा हरिश्चन्द्र के वंशज मानते थे इसीलिए यह प्रचारित होता रहा कि यही काशी का प्राचीन श्मशान है जहाँ राजा हरिश्चन्द्र श्मशानके रक्षक बने रहे।

हरिश्चन्द्रघाट के आगे काशी की सबसे खड़ी सीढ़ीवाला केदारघाट है। यहाँ का घण्टा सभी मन्दिरों के घण्टों से तेज आवाज में गूंजता है। यहाँ से कुछ दूरपर तिलभाण्डेश्वर महादेव का मन्दिर है। कहा जाता है कि ये महादेवजी साल में तिल बराबर वजन में बढ़ते हैं। पता नहीं इसके पूर्व इन्हें कभी तौला गया था या नहीं, वरना ये कितने प्राचीन हैं इसका पता पुरातत्ववाले बता देते।

यह है मदनपुरा। सम्भवतः प्राचीनकाल में यहीं मदन-दहन हुआ था। बनारसी साड़ियों के भारत प्रसिद्ध कलाकार इसी मुहल्ले में रहते हैं।

अब हम गोदौलिया आ गये। प्राचीन कालमें यहाँ गोदावरी नदी बहती थी। गोदावरी तीर्थस्थानके ऊपर आजकल मारवाड़ी अस्पताल स्थापित है। यहींसे एक रास्ता दशाश्वमेध घाटकी ओर गया है। आगे बड़ा बाजार है, बड़े-बड़े होटल और शर्बतोंकी दूकानें हैं। यहाँ काशी की ठण्डई सादा और विजया सहित मिलती है। शाम के समय अधिकांश बुद्धिजीवियों का अड्डा यहाँ जमता है। जहाँ साहित्य चर्चा से लेकर पर-चर्चातक होती है। यहीं से उपन्यास लिखने के प्लाट, कविता लिखने की प्रेरणा और आलोचना लिखने का विषय मिलता है। न जाने कितने लोगों का यहाँ 'मूड' बनता और बिगड़ता है। साहित्य में इन होटलों की देन महत्वपूर्ण है।

यह रहा गिर्जाघर जहाँ ईसाईधर्म का प्रचार खुलेआम होता है। सुनने-वालों से अधिक भाषण करने वाले दिखाई देते हैं। पास ही वाराणसी की सबसे बड़ी 'सोमरस की मण्डी' यानी ताड़ीखाना है। कुछ दूर आगे नयी सड़क मुहल्ला है। वाराणसी में अब तक जितने दंगे हुए हैं सभी का सूत्रपात इसी मुहल्ले से हुआ है। बगल में शेखसलीम का फाटक है जिसके बारे में इतिहासकार और

पुरातत्वविदों में मतभेद है। एक का कहना है कि अकबर पुत्र सलीम जब काशी आया था तब इसे बनवाया है। दूसरे का कहना है कि शेख सलीम चिश्ती के नामपर अकबर ने यहाँ फाटक लगवाया था। बात चाहे जो हो पर यह स्थान है ऐतिहासिक। इसे सभी मानते हैं।

यहां अधिकतर काबुल के सेठ रहते हैं जो बिना जमानत लिये, बिना रेहन रखे, सिर्फ शकल देखकर दो आने रुपये सूदपर मुक्तहस्त से कर्ज देकर जनता जनार्दन की सेवा करते हैं। पास ही एक बड़ा मैदान है जिसे विक्टोरिया पार्क बनाम बेनियाबाग कहते हैं। नाम तो इसका बाग है पर इसके एक भाग में अस्पताल, दूसरे में चेतसिंह की मूर्ति और बचा-खुचा भाग नेताओं के प्रवचन तथा नुमाइश के लिए रिजर्व रखा गया है।

बेनियाबाग के आगे चेतगंज है। कहा जाता है कि यह मुहल्ला राजा चेतसिंह के नामपर बसाया गया है। वारेन हेस्टिंग्स तथा चेतसिंह के सैनिकों में यहीं युद्ध हुआ था। इस मुहल्ले की नकटैया की ख्याति सम्पूर्ण भारत में है।

कुछ दूर आगे लाल कोठी में नगरमहापालिका और हथुआ कोठी में भूतपूर्व अन्नदाता, वर्तमान सीमेण्ट-लोहा दाता के कार्यालय थे। अब अन्यत्र चले गये।

यह है लहुराबीर की चौमुहानी। किसी जमाने में यहाँ भूत रहते थे, अब आदमी रहने लगे हैं। इन स्थानों का काशी में अपना निजी महत्व है। काशीमें प्रत्येक बीर के नामपर एक-एक मुहल्ला बस गया है। जैसे ड्योढ़ियाबीर, भोजूबीर और लहुराबीर आदि है।

इस चौमुहानी के उत्तरवाली सड़क कचहरी, पश्चिमवाली स्टेशन, दक्षिणवाली गिरजाघर और पूरबवाली शहर तथा राजघाट की ओर गयी है। राजघाट की ओर जानेवाली सड़क की ओर आगे बढ़ने पर घोड़ा अस्पताल (पशु चिकित्सालय), कबीरमठ और श्रीशिवप्रसाद गुप्त औषधालय भी दिखाई देंगे।

अस्पताल के सामने वाराणसी का सबसे बड़ा किराना बाजार है, जहाँ जाते ही छींक की बीमारी शुरू हो जाती है। अस्पताल की बगल में राधास्वामी का

मन्दिर है जहाँ वारेन हेस्टिंग्स आकर टिका था। पास ही 'आज' अखबार का दफ्तर, लोहे-लकड़ी की मण्डी लोहटिया और नक्खास है।

नक्खास के पास बड़े गणेशजी का मन्दिर है। यहाँ गणेश चौथ के दिन मेला लगता है। इस मुहल्ले के पास ही हरिश्चन्द्र कालेज और दारा शिकोह के नामपर बसा हुआ मुहल्ला 'दारानगर' है।

यह है मैदागिन। काशी के प्रमुख चौमुहानियों में अन्यतम। प्राचीन काल में इस स्थान को मन्दाकिनी तीर्थ कहा जाता था। अब उसकी जगह कम्पनीबाग और टाउनहाल बन गया है। इस टाउनहाल में पहले अन्धेरी कचहरी थी। अब यहाँ कचहरी नहीं है पर वह अपना प्रभाव छोड़ गयी है। फलस्वरूप टाउन-हाल बकचोंचों का मुरब्बा बन गया है। जिस प्रकार आजतक लंगड़ी भिन्न का रहस्य (छोटे, मझले और बड़े कोष्ठ का रहस्य) नहीं समझ सका, ठीक उसी प्रकार टाउनहाल क्या है समझ नहीं सका। मुमकिन है आप भी न समझ सकें।

इस स्थान से कुछ आगे भारत प्रसिद्ध संस्था काशी नागरीप्रचारिणी सभा है। बाबा विश्वनाथ के कोतवाल का भवन और कोतवाली थाना का घनिष्ठ सम्बन्ध यहीं है। वाराणसी की सबसे बड़ी अनाज की मण्डी विश्वेश्वरगंज भी यहीं है।

इस मुहल्ले के बारे में कुछ लोगों का मत है कि प्राचीन काल में काशी का प्रमुख बाजार था। यहीं पर विश्वनाथजी का मन्दिर था जिसे मुसलमानों ने तोड़ दिया। सम्भवतः इसीलिए इस मुहल्ले का नाम विश्वेश्वरगंज है। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से मालूम होता है कि तुगलक काल के पूर्व शिवलिंग का नाम देवदेव स्वामी और अविमुक्तेश्वर था। विश्वनाथ नाम १२वीं शताब्दी के बाद प्रचलित हुआ है। पास ही भीतरी महाल में गोपालजी का मन्दिर और बिन्दुमाधव का धरहरा है। यहीं एक मकान में गोस्वामी तुलसीदास वाल्मीकि रामायण को मौलिक रूप दे रहे थे।

विश्वेश्वरगंज से एक सड़क अलईपुर मुहल्ले की ओर गयी है। यहाँ एक मुहल्ला आदमपुरा है, पता नहीं बाबा आदम से इसका कोई सम्बन्ध है या नहीं।

कुछ दूर आगे मछोंदरी पार्क है जहाँ राजा बलदेवदास बिड़ला द्वारा निर्मित अस्पताल और घण्टाघर है। राजा साहब दान देने में जितना सक्रिय रहे उतना ही सक्रिय घण्टाघर बनवाने में रहे। वाराणसी में उन्होंने कई जगह घण्टाघर बनवाया है। ज्ञातव्य रहे कि वाराणसी में घड़ीघर को, जहाँ घण्टे की आवाज से समय की सूचना मिलती है, घण्टाघर कहते हैं। मछोदरीबाग प्राचीनकाल में मत्स्योदरी तीर्थ कहलाता था।

आगे राजघाट है। यह स्थान शहर का अन्तिम भाग है। इस भूभाग का वाराणसी के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में यहाँ अनेक राजाओं की आवासभूमि रही। वे सब गंगा की गोद में चले गये। अब यहाँ केवल खण्डहर रह गये हैं जिसे सरकार खुदवाकर कुछ पुरातत्वविदों की कचूमर निकालना चाहती है। इससे कुछ लोगों को चण्डूखाने की दून हाँकने का मौका मिलेगा।

अब हमें पुनः शहर की ओर मुड़ना है और शहर का प्रमुख भाग देखना है। इसलिये अब पुनः हम मैदागिन के पास आते हैं और यहीं से दक्षिण की ओर बढ़ते हैं।

मैदागिन से कुछ दूर आगे बढ़ने पर कर्णघण्टा नामक स्थान है। कहा जाता है यहाँ का मन्दिर गांगेय का पुत्र यशकर्ण ने बनवाया था। इतिहासकारों की बहुत-सी अटकल पच्चू वाली बातें केवल इसलिए स्वीकार करनी पड़ती हैं कि यह सब घटनाएँ जब हुईं तब हम वाराणसी में नहीं थे। यहाँ से कुछ दूर आगे बाबा विश्वनाथ के थर्ड डिप्टी सुपरिंटेण्डेण्ट आफ पुलिस आसभैरव रहते हैं। काशी के प्रमुख उद्योग-धन्धों की सामग्रियाँ इस इलाके में मिलती हैं। मसलन लकड़ी के विभिन्न सामान, पीतल के बर्तन, जरी और सोने-चाँदी के जेवरात इत्यादि। इसी क्षेत्र में एक जगह कन्नौज, जौनपुर, गाजीपुर का एक इलाका बस गया है। दूसरी ओर वाराणसी का प्रमुख व्यवसाय वाराणसी साड़ियों का रोजगार होता है। पुस्तक व्यवसायी, समाचारपत्र विक्रेता, मंगलामुखियों की हाट और कलवालों की दूकानें इसी क्षेत्र में हैं।

यह चौक का फव्वारा है। पहले जहाँ फव्वारा लगा था, अब वहाँ बनारस स्टेट बैंक है। वाराणसी का सबसे जानदार इलाका यही है। यहाँ अजीब बातें, अजीब शक्लें और अजीब दृश्य देखने को मिलते हैं।

'कविराज कालीपदो दे का आश्चर्य मल्हम जो १०१ बीमारियों में फायदा पहुँचाता है', आवाज लगाते हुए बगल में टीन का डिब्बा लिये बंगाली बाबू टहलते हैं। आँखों में चश्मा पहने और हाथ में सिर्फ एक चश्मा लिये—'एक चश्मा' की आवाज देते हुए बड़े मियाँ कुछ लोगों की आँख पढ़ते नजर आते हैं।

जलजीरेका पानी—आम का पन्ना, बेचनेवालों की गाड़ी, गडेरी मेरी अव्वल पैसा लेना डब्बल, दिया सलइया पैसे में, सुइया चार मुनाफे में आदि सामान बिकते हैं।

एक ओर से बन्द एक कनस्तर लिए 'गरमे हैं जी' की आवाज आती है। जबतक आप उनसे सामान न खरीदें तबतक आप यह नहीं समझ पाइयेगा कि क्या गरम है—वातावरण, मौसम, वे स्वयं या बन्द कनस्तर का सामान। आज से कुछ वर्ष पूर्व सड़कपर 'केसरिया तर हब राजा' की आवाज लगाता हुआ एक आदमी झूमता हुआ नजर आता था। उसकी गैरमौजूदगी आज के बच्चों को खलती है।

यह है परमानेण्ट हरेराम-हरेरामकी फैक्टरी जहाँ लाउड स्पीकरसे शाम के समय भक्तिप्रदर्शन होता है। सामने ही बीबी रोजा की मसजिदके बारे में कहा जाता है कि पहले यहां विश्वनाथ मन्दिर था जिसे कुतबुद्दीन ऐबक ने तोड़ा था। नीचे ज्ञानवापी की प्रसिद्ध मसजिद है जिसे औरंगजेब ने निर्मित्त कराया था

यह है सत्यनारायण मन्दिर। यहाँ सावन में भगवान् झूला झूलते हैं। उनका श्रृंगार देखने काबिल होता है।

बनारस के मुहल्लों का नाम देखकर अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन काल में यह नगर अरब देशों की भांति बन्द नगरी थी जिसके चारों तरफ फाटक

थे। मसलन—हाथी फाटक, बांसफाटक, शेख सलीम का फाटक, रंगीलदास का फाटक और फाटक सुखलाल साहु आदि आठ फाटक थे।

अब हम गोदौलियापर आ गये। इस प्रकार सारा शहर घर बैठे देख लिया। क्या जरूरत कि आप बनारस आयें और दो आना प्रवेश कर दें। हाँ यदि गंगा-स्नान, विश्वनाथ दर्शन अथवा शहर देखने का काफी शौक है तो हमें एतराज नहीं। अगर और निरालापन देखना हो तो यहाँ के धनुपाकार घाट, धरहरे का एक खंभा, यहाँ की गलियाँ और यहाँ के मेले देखें। बस सारा बनारस आपकी नजरों से गुजर जायगा।

वाराणसी का दर्शन

यह वाराणसी है। यहां घर-घर में मन्दिर मिलेंगे, कंकर-कंकर में शंकर मिलेंगे, गली में गुण्डे, घाट पर पण्डे और बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं में विरक्त साधु और सन्यासी मिलेंगे। यहाँ सड़क की पटरियों पर पण्डित, घाट की सीढ़ियोंपर दार्शनिक और पान की दूकानोंपर साहित्यिक एवं पत्रकार मिलेंगे। कथा, कीर्तन में श्वेत-वसना विधवाओं की बगुले की पांत, गंगातटपर मुक्तकेशी अलका सुंदरियों की जमात, राह चलते उदार जेबकतरों और अनुदार भिखमंगों से साक्षात्कार होगा जो पहली मुलाकातों में ही आपको अच्छा सबक सिखा जायँगे। चौराहोंपर शिव के वाहन खड़े दिखाई देंगे। आपको देखते ही अमेरिका की फ्री स्टाइल कुश्ती के लिए चुनौती देंगे और आप मैदान छोड़ भाग खड़े होंगे।

काशी के मस्त सांड़ और अलमस्त नागरिकों को, मस्ती के अवतार बाबा विश्वनाथ का प्रसाद प्राप्त है। तीन लोक से न्यारी काशी। कोई ऐसी बात है जरूर, जो काशीवालों को दुनियां से निराला बनाती है। वह और कुछ नहीं है, केवल गंगाजल। 'चना चबेना गंगजल, जो पुरवै करतार। काशी कबहुं न छोड़िये, विश्वनाथ दरबार।' यह काशी का जीवन-दर्शन है, अजगरी सूत्र है। सेती की गंगा में गोते लगाना, डण्ड पेलना, बूटी छानना और पान चबाना यह काशी की दैनिकी है। बनारसी अगौछा काशी की राष्ट्रीय वेशभूषा है। पान की दूकान काशी का क्लबघर है, रेस्टरां है। काशी के आस-पास शायद ही कोई ऐसा सौन्दर्यस्थल बाग-बगीचा होगा जिसे बनारसी ने अपनी बूटी छानने के लिए न चुना हो। बनारसीकी सुरुचि, सुस्वाद, सफाई और सौन्दर्य-प्रेम तो जग जाहिर है।

वाराणसी काफी पुराना है। कितना पुराना कहा नहीं जा सकता। जहाँतक पुराने लोगों की दृष्टि पहुँचती है। काशी गंगातटपर यथास्थान स्थित है।

गंगा की लहरों ने घाट की सीढ़ियोंपर इतिहास लिपिबद्ध किया है। पुरातन काशी की परम्परा की अमिट छाप काशी के जीवन पर अंकित है। नयी दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई भारतीय प्रतिनिधि नगर बनने का ढोंग रचते हैं पर भारत की सभ्यता-संस्कृति का अमर कोश काशी में ही है। किसी को यहाँ गन्दगी दिखाई देती है तो बहुतों को यहाँ आत्मिक शांति भी मिलती है।

आधा वाराणसी आज भी गलियों में बसता है। मुख्य राजमार्ग से गंगा-तटतक गलियों का विकट चक्रव्यूह फैला हुआ है। गलियों में खड़ी विशाल अट्टालिकाएं ऊपर गले मिल जाती हैं। किसी बनारसी से कहिए, गली का मकान छोड़कर खुले में आ जाय तो शायद ही कोई पुरखों की हवेली, बाप दादों का मुहल्ला छोड़ने को तैयार हो। भूल-भुलैया सी गलियों में आपको छोड़ दिया जाय तो बाहर निकलने के लिए शायद आपको पुनर्जन्म लेने की नौबत आ जाय। गलियों में आपका दम घुट रहा है। आइये बाहर चलें। इसके बाद घाट ही तो है।

यह देखिये, सामने गंगा शंकर की नगरी में शान्त, नतमस्तक बही चली जा रही हैं। भारत की जीवन-गंगा काशी में अपना उन्मुक्त हास बिखेरती है। काशी के घाट युगों से गंगा की शोभा निहार रहे हैं। तट की विशाल अट्टालिकाएँ गंगा के दर्पणमें अपना मुख निहारती हैं। सैकड़ों विद्युत दीप, हजारों आकाशदीप गंगा की आरती उतारते हैं। दीपों की छाया जल में ऐसी लगती है जैसे जल-परियाँ नाच रही हों। छायालोक में घाटों की अट्टालिकाएँ स्वप्नलोक के महल सी लगती हैं। काशी का गंगातट कवियों का सुन्दर स्वप्न है, प्रेरणा है। यहीं कहीं बैठकर तुलसीदास, जगन्नाथ, भारतेन्दु, रत्नाकर और प्रसाद ने यदि गीत गुनगुनाये हों तो आश्चर्य नहीं।

गंगातट का आनन्द लेने के लिए आइये, नौकापर चलें। दूर से देखिये धनुषाकार काशी। गंगा की कटि की मेखला बनी हुई अट्टालिकाओं की अटूट शृंखला! लगता है, जैसे रोषभरी गंगा के आक्रोश से अपनी नगरी की रक्षा के लिए भगवान् शंकर ने जबरदस्त किलेबंदी की हो। घाटोंपर खड़े प्रस्तर शिला

खण्डों ने काल से लोहा लिया है। बाढ़ की गंगा के रौद्र रूप को शीशपर संभाला है। गंगा के थपेड़ों ने मन्दिरों की सीढ़ियोंपर शंकर के पाँव पखारे हैं और गंगा चुपचाप उत्तर मुख मोड़कर चली गयी है। और ये गर्वीले घाट आज भी अटल अचल खड़े हैं। तट की अट्टालिकाएँ मस्तकनत संयत भाव से यथास्थान खड़ी हैं।

काल और चट्टान के संघर्ष में चट्टानों की पराजय हुई। काल के आगे इतने दिन ये प्रस्तरखण्ड खड़े रहे यही बहुत है। आज ये घाट काल के गाल में समा रहे हैं। घाटों की नींव खिसक रही है, पुश्ते सरक रहे हैं। एक एक करके गंगातट के ये समाधिस्थ योगी जलसमाधि ले रहे हैं। काल का यही क्रम रहा तो ये विशाल अट्टालिकाएँ एक दिन गंगा के गर्भ में समा जायँगी और गंगातट के खण्डहरों को हम विदेशी पर्यटकों को दिखाकर कहेंगे कि यहाँ कभी सुन्दर घाट थे। नदी तीर की विश्व की सुन्दरतम नगरी के घाटों के सौन्दर्य की रक्षा तो होनी ही चाहिये।

वाराणसी की सुबह और लखनऊ की शाम प्रसिद्ध है। प्रातःकालीन बाल रवि की सुनहली किरणों में गंगाघाट की अट्टालिकाओं का स्नान सचमुच देखने की चीज है। मगर आप तो रेशमी दुलाइयों में पड़े हैं। आपको पता है, थोड़ी थोड़ी सिहराती कार्तिक की रात में कोमलांगियाँ अर्ध रात्रि से ही गंगा के शीतल जल में स्नान शुरू कर देती हैं। यह पंचगंगा घाट है।

यह देखिये सामने सद्यःस्नाता तरुणी का लज्जा संकोच, ध्यानावस्थित वानप्रस्थी का भृकुटि संकोच। तख्तपर बैठे हुए सज्जन का द्रविड़ प्राणायाम तो बस देखने की चीज है।

उधर देखिए, पूर्व की ओर गुलाबी आभा के बीच किरणें फूट रही हैं। सामने बालुकाराशि, बीच में गंगा की नीलम जलधारा और क्षितिज पर बाल रवि ने प्रथम किरणों की माला गंगा को पहना दी। अट्टालिकाएँ गुलाबी रंग से नहा उठीं, गंगा की लहरें किरणों से कल्लोल करने लगीं, बालू के कण चमक उठे। हृदय अनुराग से रंग उठा। पूर्व क्षितिज के कलाकार चित्रकार को मौन श्रद्धांजलि। मन्दिरों में आरती शुरू हो गयी है। घण्टे,

घड़ियाल, शंख बज रहे हैं। हर हर गंगे का स्वर घोष सुनाई दे रहा है। स्नान, ध्यान, पूजा का क्रम जारी है। यह वाराणसी का सुबह है। पर शाम के लिए आपको लखनऊ जाने का कष्ट नहीं करना होगा। वैसे वाराणसी में काफी आकर्षण है। मैं शामे लखनऊ की शान के खिलाफ कुछ कहने की हिमाकत नहीं करूँगा। शामे-वाराणसी की तारीफ जरूर कुछ करना चाहूँगा। लखनवी बन्धु क्षमा करेंगे।

यह वाराणसी की शाम है। आइये घाट की ओर चलें। देखिये सीढ़ियाँ हैं। जरा सम्हलकर उतरियेगा। जरा फिसले कि स्वर्ग का रास्ता सीधा है। दो-चार बार चढ़िये उतरिये, अच्छा खासा व्यायाम हो जायगा। वजन कम करना हो तो इससे अच्छा दूसरा व्यायाम नहीं। सीढ़ियाँ गिन रहे हैं आप! जाने दीजिये। तो यह दशाश्वमेध घाट है।

लीजिये कथा, कीर्तन, प्रवचन, भाषण, साहित्यिक गोष्ठी, दर्शन विवेचन सभी रुचि के लोगों के लिए यहाँ सामान है। राधा-नटनागर की प्रेमकथा और मृदङ्ग के बोल सुनने को स्त्रियों की भीड़ एकत्र है। पण्डितजी महाभारत की कथा कह रहे हैं। उधर स्वामीजी रामायण की एक चौपाई अलाप रहे हैं। घाट की बुर्जी पर लाउडस्पीकर पर एक सज्जन भाषण कर रहे हैं। घाट पर इधर उधर खड़े दर्शकों को अपनी सभा में शामिल समझ रहे हैं। इधर देखिये, योगिराज हठयोग का प्रदर्शन कर रहे हैं। सामने तट के समीप बजड़े पर साहित्यिक गोष्ठी जमी हुई है। जलपान चल रहा है। साथ में साहित्यिक चर्चा भी हो जाती है। अनिमन्त्रित वहाँ जाना ठीक नहीं है। यह बूढ़े बाबा क्या पढ़ रहे हैं? गीता का प्रवचन कर रहे हैं। जानते नहीं, हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त जज हैं। काशीवास कर रहे हैं।

घाट की सीढ़ियों पर बैठे हुए ये बूढ़े हिन्दुस्तान के चारों कोनों से यहाँ मरने के लिए आये हैं। जी हाँ, काशी में मरने के लिए आये हैं। काशी में मरने से मुक्ति मिलती है, इसलिए लोगों ने काशी को महाश्मशान बना लिया है। पेन्शन ली, हाथ में गीता, गले में कंठी माला और जेब में बैंक का पासबुक रख

कर चल दिये काशी में मरने के लिए। काशी की आधी आबादी इन जिन्दा-मुरदों की और बाकी आधी जिन्दादिलों की है।

दुर्भाग्यवश अपना मकान काशी में एक ऐसी गली में है जिधर से होकर मुरदे मणिकर्णिका घाट जाते हैं। रात को 'राम नाम सत्य है' की वाणी कर्णकुहरों में गूँजती है तो कान, प्राण और मकान के रहनेवाले सभी थर्रा उठते हैं। सरकारने इस्टेट ड्यूटी लगायी तो मैंने सोचा कि अब काशी में मुरदों के आयात में कमी होगी, पर देखता हूँ मरनेवालों की संख्या में कोई कमी नहीं। बाबा विश्वनाथ का महाश्मशान दिन दूना, रात चौगुना तरक्की कर रहा है। मणिकर्णिका घाट के मार्ग स्वर्गमें पहुँचनेवालों ने रास्ता न बदला तो अपने राम पुरखों का मकान बदलकर किराये का मकान लेने की सोच रहे हैं। एक दिन मुझको भी इसी घाट की ओर यात्रा करनी है......यह सोचकर अपना विचार बदलकर दार्श-निक मौन धारण कर लेता हूँ।

पंचगंगा घाट, दशाश्वमेध घाट, मणिकर्णिका घाट आपने देख लिया। काशी के घाटों की नामावली सुनकर क्या करियेगा, किसी मल्लाह या पंडे से पूछ लीजि-येगा। एक हो तो बता दूँ। एक सौ एक घाटों के नाम गिनने, खैर जाने दीजिये...। इन घाटों पर ही आप समूचे भारत का दर्शन कर सकते हैं। यहाँ हर किस्म, हर मेल, हर रंग, हर प्रान्त के लोग मिलेंगे। भाषा और वेशभूषा की ऐसी सुन्दर स्थायी प्रदर्शनी भारत के और किसी भाग में नहीं दिखाई देगी। गंगातट के विभिन्न घाटों पर विभिन्न प्रान्तों की बस्तियाँ मिलती हैं। ब्रह्मा घाट, पंचगंगा घाट और दुर्गा घाट में महाराष्ट्रीय समाज, मणिकर्णिका घाट, गाय घाट में पंजाबी; रामघाट, भोसला घाट, सिंधिया घाट में गुजराती; दशाश्वमेध घाट, अहिल्याबाई घाट में बंगाली तथा केदार घाट, हनुमान घाट, हरिश्चन्द्र घाट में दक्षिणी समाज की बस्तियाँ हैं।

काशी बहुभाषी भारत का एक लघु संस्करण है। काशी का प्रत्येक घाट भारत के किसी राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। काशी भारत की सांस्कृतिक राजधानी है और काशी के घाट भारत के विभिन्न प्रदेशों के संसदीय प्रतिबिम्ब। भारत के भाषाविवादी काशी आकर देखें, यहाँ भाषा का विवाद नहीं होता,

सीमा-विभाजन का झगड़ा नहीं होता, यहाँ उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम चारों दिशाओं के लोग न केवल राष्ट्रभाषा बोल और समझ लेते हैं बल्कि बाबा विश्वनाथ की दरबारी भाषा भोजपुरी भी बोलते हैं। अपने-अपने दरजों में सभी अपनी बोली बोलते हैं, पर काशी की गलियों में घाटों पर एक ही स्वर गूँजता है।

'हर हर महादेव शम्भो, काशी विश्वनाथ गंगे।'

वैसे तो काशी के घाटों पर, विशेष कर दशाश्वमेध घाट पर साल भर मेला-सा लगा रहता है, पर विशेष पर्वों पर घाटों की छटा देखने योग्य होती है। दशहरे पर दशाश्वमेध घाट पर दुर्गा की प्रतिमा का विसर्जन, कार्तिक मास में पंचगंगा घाट का स्नान, कार्तिकी पूर्णिमा को गंगा तट की दीपमालिका, दुर्गा घाट की मुक्की, पंचगंगा घाट की कुश्ती, तुलसी घाट की नागनथैया विशेष आकर्षक हैं। इनमें दुर्गा घाट की मुक्की देखकर आप अमेरिकी फ्री स्टाइल की कुश्ती और बाक्सिंगको भूल जायँगे। पंचगंगा घाट पर बांस की लड़ाई में दर्जनों के सिर फूटते हैं। काशी के युवक रक्त से होली खेलते हैं। यह काशी का जीवन है।

काशी वाले आज भी पुरानी परम्परा निभाये जा रहे हैं। युग बदला, राज बदले, शासनयन्त्र बदले, पर काशी न बदली। प्रतिपल बदलने वाली आज की दुनिया में, नितनूतन को ही फैशन और जीवन समझने वाली विचारधारा में काशी पिछड़ी हुई, पिछड़े युग का प्रतीक समझी जायगी।

खेद का विषय है कि गंगा की धारा जिसे नहीं बदल पायी, उसे जमाने की हवा बदल रही है। जी हाँ वाराणसी बदल रहा है। काशीवालों का सवेरा अब लेहाफ के अन्दर होने लगा है। गंगास्नानके बदले अब गुसलखाने में गरम पानी का प्रयोग होता है, दूध-मलाई की दूकानों की जगह चाय की दूकानें खुल गयी हैं, पान की दूकान वाले सिगरेट भी बेचने लगे हैं। मक्खन, मिश्री की आवाज अब गलियों में कहीं सुनाई नहीं देती, सबेरे का नाश्ता हलवा पूरी की जगह चाय बिस्कुट से होता है। वह दिन दूर नहीं, जब काशी भी नयी दिल्ली की तरह नया बनारस का रूप धारण कर लेगी और पुरानी काशी का चिराग लेकर ढूंढ़ने पर भी कहीं पता न मिलेगा।

काशी के प्रमुख बाजार और मंडियाँ

काशी में सबसे बड़ा कारबार विश्वेश्वरगंज की अनाज मण्डी में होता है जिसका स्थान उत्तरप्रदेश में दूसरा है। भारत के विभिन्न भागों से यहाँ गल्ला और तेलहन आता है। यहाँ से पूर्वी जिलों को आवश्यकतानुसार माल भेजा जाता है। बाजार में नित्य प्रति गेहूँ, चावल, जौ, गोजई, अरहर, उरद, ज्वार, बाजरा आदि का स्टाक २५५ हजार मन का रहता है। मण्डी में रोजाना की आमद २५ हजार मन है अर्थात् १० हजार बोरा जिसमें ४०० बोरा वाराणसी नगर और जिले की खपत नित्य की है। शेष पूर्वी जिलों और आसपास के बाजारों में भेजा जाता है। घी प्रमुखतः बुटवल, नौतनवा, चन्दौसी, खुर्जा, इटावासे और गल्ला पश्चिमी जिलों मेरठ, हापुड़, सहारनपुर, चन्दौसी, कानपुर आदि के बाजारों से मँगाया जाता है।

यहाँ लगभग ४० पक्की आढ़तें हैं जहाँ बाहर की मण्डियों से थोक माल यहाँ बिकने आता है और ६० कच्ची आढ़तें हैं जहाँ से जिले के विभिन्न भागों के व्यापारी थोक या फुटकर माल ले जाते हैं।

गोला दीनानाथ

नगर के मध्य में स्थित गोला दीनानाथ प्रमुख किराना मण्डी है। उत्तर-प्रदेश में कानपुर के बाद इसी का स्थान है। विशेष विवरण आगे दिया गया है।

सराफा बाजार

क्षेत्र की दृष्टि से काशी का सोने-चाँदी का व्यापार अधिक विस्तृत है। मुख्यतः बम्बई और कलकत्ता के बाजार भावों पर यह निर्धारित होता है तथापि पूर्वी क्षेत्र की दृष्टि से इस बाजार को महत्व दिया जाता है। काशी के कई प्रसिद्ध मुहल्ले केवल इस व्यवसाय में ही संलग्न हैं। रानीकुआँ, ठठेरीबाजार, गोविन्दपुरा, हौजकटोरा, राजादरवाजा और

काठ की हवेली में सोने-चाँदी के आभूषणों की भी बिक्री पर्याप्त मात्रा में होती है। वाराणसी में सराफा की लगभग १५० दूकानें हैं।

कुंजगली

नगर के इस बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी हुआ करता है। वाराणसी जरी और कलाबत्तू के काढ़े गये अत्यन्त कलात्मक और सूक्ष्म ढंग का काम, विदेश-प्रसिद्ध वाराणसी साड़ियाँ, फैन्सी साड़ी, टीसू की साड़ी, पोत, किमखाब, ब्लाउज पीस, चादर, लहंगा, ओढ़नी आदि यहीं से बिक्री की जाती है। विदेशों में भी इसकी माँग है। केवल अमेरिका को ही ५० लाख रुपये का माल निर्यात किया जाता है। यहाँ का वार्षिक व्यवसाय करोड़ों रुपयों तक पहुँचता है। नित्यप्रति का हेरफेर लगभग ४ लाख रुपये का होता है। कुंजगली और लक्खीचौतरा इस व्यवसाय का प्रमुख बाजार है। कुल साढ़े चार सौ दूकानें हैं। इण्डियन आर्ट पैलेस, इण्डियन टेक्सटाइल्स, प्रकाश ब्रदर्स, रामभजन रोशनलाल, मोहनलाल गोपालदास, कपूर ब्रदर्स, तथा जवाहर एण्ड कम्पनी विदेशों में भी व्यापार करती हैं।

ठठेरीबाजार

पीतल के बर्तनों का यह मुख्य केन्द्र है। घरेलू उपयोग के बर्तनों के अलावा यहाँ सजावट के लिए पीतल के कलात्मक बर्तन भी मिलते हैं। धनतेरस के दिन काशीवासियों का ध्यान अनायास ही बिजली की रोशनी में दमकते बर्तनों के प्रमुख बाजार की ओर खिंच जाता है।

लोहटिया

लगभग २५० वर्षों से अपने नाम को सार्थक करता हुआ लोहटिया का बाजार उत्तरप्रदेश में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ लोहे की बनी अधिकतर घरेलू उपयोग की वस्तुएँ ही बिकती हैं, जिनमें कराही, तवा, गगरा, दमकला, पलटा, चिमटा आदि वाराणसी में ही तैयार होता है। लोहे की चादर, तार, सिकड़ी आदि, टाटा स्टील कम्पनी से मँगायी जाती है। अधिकतर प्रमुख व्यवसायी टाटा कम्पनी के विक्रेता हैं।

इमारती लकड़ी की मण्डी

इमारती लकड़ी की यह मण्डी लोहटिया के पास नखास मुहल्ले में स्थित है। यहाँ के व्यवसायी गोरखपुर, नेपाल, बहराइच, पलामू और मध्यभारत से साखू, सागवान, टीक, शीशम और आम की लकड़ियाँ मँगाकर कारखानों में मशीन पर चीर काटकर दरवाजे, आलमारी, खिड़की, पलंग आदि सामान बनाते हैं। इस तरह के २० कारखाने यहाँ हैं।

साइकिल की दूकानें

बुलानाले के दोनों ओर साइकिल की बड़ी दूकानें हैं। सबसे पुरानी साइकिल की दूकान वाराणसी साइकिल स्टोर्स और यू० पी० साइकिल स्टोर्स की है। इसके अतिरिक्त श्यामलाल एण्ड कम्पनी, वरुणा साइकिल मार्ट, वाराणसी साइकिल ट्रेडर्स, तारा साइकिल स्टोर्स, बिहार साइकिल स्टोर्स की दूकानें हैं। अब लहुराबीर तथा कबीरचौरा मुहल्ले में भी अनेक बड़ी दूकानें खुल गयी हैं।

बिसातखाना व्यवसाय

राजादरवाजा और हड़हा सराय में बिसातखाने का बाजार है जहाँ सभी बड़ी-छोटी वस्तुएँ मिलती हैं। यहाँ बिसातखाने के ५०० थोक व्यापारी हैं जो बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली से मास में लगभग ४॥ लाख रुपये का सामान मँगाकर ९० प्रतिशत वस्तुएँ उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिले बलिया, आजमगढ़, देवरिया, मीरजापुर, जौनपुर, बहराइच, गोरखपुर, और उत्तरी बिहार, छपरा, सारन, मुजफ्फरपुर, सहसराम आदि स्थानोंपर भेजते हैं। १। लाख रुपये का कारबार वाराणसी नगर के लिए महीने में यहाँ होता है।

पुस्तकों की दूकानें

बुलानाला, नीचीबाग, आसभैरव, चौक और बाँसफाटक से गुजरता हुआ व्यक्ति सड़क के दोनों ओर पुस्तकों की दूकानों की लगी पंक्तियाँ अवश्य देखेगा। ऐसे व्यवसायी दो प्रकार के हैं। एक तो साहित्यिक प्रकाशक तथा विक्रेता और दूसरे पाठ्य पुस्तक विक्रेता। चौक में ज्ञानमंडल साहित्यिक प्रकाशक तथा विक्रेता और चौखम्भा का विद्याभवन संस्कृत पुस्तक प्रकाशक विक्रेता है।

बाँसफाटकपर नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, जो पाठ्य पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता हैं, कल्याण ब्रदर्स जो सभी प्रकार की पुस्तकें बेचते हैं, दो दूकानें हैं। यहीं प्रेमचन्द गृह है जहाँ साहित्यिक पुस्तकें बिकती हैं।

दूध व्यवसाय

वाराणसी में दूध का व्यवसाय भी उच्चकोटि का है। तीन प्रसिद्ध स्थान दूध की मण्डी के नाम से विख्यात हैं—जतनबर, पथरगलिया और गोदौलिया जहाँ प्रत्येक स्थानपर लगभग ३० मन दूध की रोजाना बिक्री होती है। प्रतिदिन कई सौ ग्वाले नगर के विभिन्न भागों से दूध ले आकर इकट्ठे होते हैं और यहीं उसकी बिक्री के निमित्त मोल-भाव करते हैं। दूसरा दूध का बड़ा औद्योगिक केन्द्र वाराणसी सहकारी दुग्ध संघ मल्दहिया में है जहाँ विद्युत् यन्त्रों द्वारा दूध, घी, मक्खन आदि तैयार करके नगर के मुख्य मुहल्लों में बिक्री की जाती है। यहाँ ४७ दुग्ध सहकारी प्राइमर समितियों से दूध आता है। ये सारी समितियाँ जिले की दो प्रमुख सड़कों पर स्थित तीन विभिन्न दुग्ध-संग्रह केन्द्रों से सम्बन्धित हैं। पहला दुग्ध संग्राहक केन्द्र गाजीपुर रोड पर राजवारी नामक गाँव में है। दूसरा केन्द्र वाराणसी सैदपुर रोडपर पालिया नामक गाँव में है, तीसरा केन्द्र वाराणसी सैदपुर रोडपर चहनियाँ नामक गाँव में है। वर्ष में १४ हजार मन दूध उपयोग में लाया जाता है। इसके अलावा बाहर के तथा शहर के ग्वाले दूध दही की दूकानोंपर तथा घर-गृहस्थों को बन्धी दूध देते हैं। यहाँ दूध की खपत बहुत अधिक है क्योंकि यहाँ दूध, मलाई और खोये की मिठाई का अधिक प्रचलन है। भाँग-बूटी के बाद तो इन्हीं के सेवन से तबियत मस्त होती है।

टिकुली

नारी की सौंदर्य वृद्धि के लिए अबतक जो चेष्टाएँ हुई हैं उनमें टिकुली का आविष्कार कम महत्त्वपूर्ण नहीं। ललाटपर सिन्दूर की सुहाग बिन्दी लगाने का रिवाज तो हिन्दू समाज में विवाह प्रथा से सम्बद्ध है। इसी का स्थान अब टिकुली ने ले लिया है। इससे एक लाभ महिलाओं के हित में यह हुआ है कि सिन्दूर

बिन्दी तो विवाहिता स्त्रियाँ ही लगाती हैं पर टिकुली तो कोई भी स्त्री सौंदर्य वृद्धि के लिए लगा सकती है।

काशी में विविध प्रकार की टिकुली बनती है। इसकी इतनी डिजाइनें हैं कि यह चुनाव करना कठिन हो जाता कि कौन-सी लें और किसको छोड़ें। यहाँ पक्की टिकुली जानीवाकर शराब की बोतल के कांच से बनती है। यह स्वाभाविक रूप से हल्के सुनहले रङ्ग की होती है। इसपर जब नक्काशी होती है तो इसकी मादकता द्विगुणित हो जाती है और फिर सुन्दरी के ललाट पर तो इसकी शोभा इतनी बढ़ जाती है कि बस देखते ही बनती है।

अपनी इसी विशेषता के कारण यहाँ की टिकुली भारत के कोने-कोने में जाती है और विदेशों में जहाँ भी भारतीय हैं वहाँ भी पहुँचती है। इसको अब आधुनिक नाम दे दिया गया सिनेमा टिप्स। फिल्मों से फैशन चलता है। एक जमाना था जब पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ टिकुली लगाना गँवारूपन समझती थीं। लेकिन जब सिनेमा की सुन्दरियाँ इसे लगा रजत पटपर उतरीं तो इसकी लोकप्रियता बढ़ते देर न लगी। अब तो ऐसा हो, गया है कि इसकी पूछ हर घर में होती है और प्रत्येक स्त्रियाँ इसे लगाना पसन्द करती हैं।

बनारसी कीनखाब

प्राचीनकाल से यहाँ यह जरी व्यवसाय होता चला आ रहा है। यहां के कीनखाब एवं जरी के कपड़े विलायत जाते थे। मेकाले ने लिखा है—'सेण्ट जेम्स एवं वरसलीज के हाल वाराणसी के करघों पर बुने सुन्दर सिल्क के कपड़ों से सजाये जाते थे।' बादशाह लोग विलायत जो तोहफा भेजते थे उसमें वाराणसी के सोने-चाँदी के कलाबत्तू के कीनखाब, परदे वगैरह अन्य जवाहरातों के साथ अवश्य भेजे जाते थे। खिलअत वगैरह में भी वाराणसी वस्त्र इस्तेमाल होता था। ब्याह शादीमें तो प्राचीन काल से आज तक वर-वधू को यहीं का कपड़ा पहिनाने का रिवाज चला आता है (चीन, तिब्बत इत्यादि में भी यहाँ का कीनखाब, बहुतायतसे निर्यात होता था जो अब भी जारी है)। यह कला पहले काशी के पटेल (पाटीकल) लोगों के हाथ में थी जो वनस्पती रंग से पक्का माँठ का रंग बना बनाकर हाथ करघा पर साड़ियाँ, किनखाब वगैरह बिनते थे। उसमें पुराने रीति से असली सोने चाँदी का बादला बनाकर कलाबत्तू बनाकर वे बिनते थे। जिनकी बहुत मजबूत एवं टिकाऊ होने के कारण दूर देशतक मांग थी। मुसलमानी राज्य स्थापना के बाद यहाँ मुसलमानों की बस्ती बढ़ी और उन्होंने उद्योग-धन्धा शुरू किये। उन्होंने हाथ करघे का काम भी इन्हीं पटेलों से सीखा। धीरे-धीरे मुसलमान कारीगरों ने अच्छी तरक्की की और पटेल लोग पीछे हटते गये। यह लोग पाटन गुजरात में जाकर पटोला वगैरह बिनते हैं।

हाथीदाँत की हस्तकला

काशी की यह हस्तकला प्राचीन समय से देशविख्यात है परन्तु समय के प्रभाव से सुप्त अवस्था में आ गयी थी। पर स्वर्गीय श्री जमनादास द्वारा संस्थापित कारखाना जमनादास रामकृष्ण दासने आज से ५४ वर्ष पूर्व इस कला का पुनरुत्थान कर १०० के करीब कलाकारों को कार्यकुशल बनाया है और उनके

कारखाने से आज जो कलापूर्ण वस्तुएँ निकलती हैं उनका निर्यात देश-विदेशों में थोक व्यापारियों द्वारा होता रहता है। इनके कलाकुशल कलाकारों द्वारा तरह-तरह की मूर्तियाँ, खिलौने, बटन, चूड़ियाँ, माला वगैरह बनायी जाती हैं। अभी हाल में ही ता० २-१०-५५ को इनके द्वारा निर्मित कलापूर्ण वस्तुओं का प्रदर्शन गवर्नमेंट वीविंग इन्स्टीच्यूट द्वारा हुआ था जहाँ तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द ने निरीक्षण कर प्रशंसा की थी। आशा है कि इस कला का सरकार द्वारा सहयोग प्राप्त होनेपर पूर्ण विकास होगा।

लकड़ी के खिलौने

लकड़ी के खिलौने का उद्योग, पहले की अपेक्षा अब अवनति की ओर है। इसका मुख्य कारण इस दिशा में प्लास्टिक और कार्डबोर्ड आदि के खिलौनों, जो सस्ते होते हुए भी आकर्षक हैं, का आविष्कार ही है। फलस्वरूप इस उद्योग पर धक्का लगना स्वाभाविक ही है। इसका बुरा प्रभाव उन कारीगरों पर पड़ा है जो कभी इसकी कलापर काशीनरेश से सनद और पुरष्कार पाते थे।

संक्षिप्त इतिहास

इस उद्योग का प्रारम्भिक रूप मुसलिमकाल में मिलता है जब कि यह केवल 'कला' थी और राजाओं की दरबारी विलास की वस्तु थी। जब साधारण जनता की रुचि भी इस ओर हुई तब यह उद्योग के रूप में चल पड़ा। यद्यपि प्राचीन कला का अब उतना मुखरित रूप देखने को नहीं मिलता तथापि कल्पनाके सहारे लकड़ियों पर रेती और गोंद की सहायता से इस सूक्ष्मता से जानवरों और मूर्तियों के चित्र बना दिये जाते हैं कि निर्जीव काठ में जान आ जाती है।

उत्कृष्ट कला

इन खिलौनों में मूर्तियाँ, जानवर, छोटे बच्चों के लिए खिलौने जैसे झुनझुना, चटनी, लट्टू आदि रहते हैं। कला की दृष्टि से जानवर के खिलौने अधिक अच्छे रहते हैं क्योंकि उसमें मूर्त आधार कम होता है। प्रायः १२ प्रकार के जानवर बनाये जाते हैं जिनमें बछड़े का दूध पीना, शेर और शिकारी, हरिण की छलांगें

आदि काफी भावपूर्ण और वास्तविकता से ओतप्रोत रहते हैं। जानवर के खिलौने ३ इंच से ६ इंच तक के बनाये जाते हैं। इसके अलावा बिलकुल छोटे आधे इंच तक के भी जानवर बनते हैं जिनकी सूक्ष्मता देखते बनती है। मूर्तियों के बनाने में यद्यपि मूर्त आधार कुछ अधिक रहता है परन्तु विष्णु शयन, गंगावतरण कृष्ण रासलीला आदि के भावानुसार मूर्तियाँ बनाना अधिक श्रमसाध्य भी है। ऐसी मूर्तियाँ १ फुट तक बनायी जाती हैं। यदि माँग की जाय तो इससे बड़ी और अच्छी मूर्तियाँ बनायी जा सकती हैं। इस तरह यह उद्योग फर्माइशी भी हो चला है।

कलाकार और व्यवसायी

घुरकुन की लकड़ी मूर्तियाँ बनाने के लिए सर्वश्रेष्ठ होती है। शीशम की लकड़ी बच्चोंके खिलौने के लिए टिकाऊ होती है और गूलर की लकड़ी के जानवर बनते हैं। कारीगर केवल खिलौने बनाते हैं, जिनमें कुछ केवल जानवर, कुछ मूर्तियाँ और कुछ बच्चों के खेलने के लिए सामान बनाने के विशेषज्ञ हैं। व्यापारी माल लेकर रंगनेवालों के पास भेज देते हैं और तब फुटकर तथा थोक बिक्री होती है। इस तरह पूरे व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों की संख्या लगभग २॥ हजार है जिनमें कारीगर २॥ सौ हैं, जिनमें पियरी पर ६०, खोजवा में २०, रामापुरा में ३०, लछमनपुर में १०, कबूतर बाजार में १०, गायघाट में ६, वृद्धकाल में १५ हैं। कश्मीरीगंज में घुघना, चटनी, लट्टू आदि छोटे बच्चों के लिए सामान बनते हैं। हड़हा की सराय में थोक व्यापारी १५ हैं। विश्वनाथ गली में फुटकर व्यापारी हैं जिनकी संख्या २५ है। रंगसाजों ने अपना एक संघटन बना लिया है और उनकी संख्या ५० के लगभग है।

व्यापारियों को लाभ अधिक

इस उद्योग में व्यापारी अपेक्षाकृत अधिक लाभ में रहते हैं। कारीगर मारे जाते हैं। यदि कारीगर कठिनाई से १) कमाता है तो व्यापारी ४५ रुपया उसी वस्तु से अर्जित करता है।

रंगसाजी

नये बजट से हालाँकि रंगादिका भाव बढ़ा है परन्तु इस उद्योग पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। व्यापारी किसी भी अवस्था में रंगसाजों की दर को बढ़ाने के लिए तैयार नहीं हैं जिससे विवश होकर रंगसाजों को घटिया किस्म का रंग इस्तेमाल करना पड़ता है।

खिलौने विदेश अब भी जाते हैं

खिलौनों का वार्षिक उत्पादन ५ लाख रुपये का है जिसमें १ लाख रुपये का वार्षिक निर्यात विदेशों को होता है। अंग्रेजी शासन के अन्त हो जाने के बाद इंगलैंड में इसकी माँग अवश्य कम हो गयी। पर अमेरिका, फ्रांस और सिंगापुर में अब भी उन व्यापारियों द्वारा इसका निर्यात होता है जो बनारसी साड़ी तथा रेशमी वस्त्र बाहर भेजते हैं। अभी हाल में लन्दन में हुई औद्योगिक प्रदर्शनी में यहाँ के लकड़ी के खिलौने विशेष रूप से भेजे गये थे, अंग्रेजों ने इसे 'नयी कला' कहकर पुकारा। इसके अतिरिक्त २॥ लाख का सामान दिल्ली, कानपुर, बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता आदि नगरों में जाता है। लगन और मेलों के अवसरपर माँग कुछ तेज रहती है।

उद्योग की समस्याएँ

इस उद्योग के विकास में निम्न कठिनाइयाँ हैं—पहली समस्या इस उद्योग के संघटन के बारे में है। यह असंघटित है, जिससे समस्याओं को लेकर एक ठोस कदम नहीं उठा पाता। इसके अतिरिक्त यदि एक बार ही १-२ हजार रुपये की मांग आ गयी तो उसको पूरा करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।

रंग सम्बन्धी कठिनाई से भी उद्योग का विकास रुक-सा गया है। रंगसाज पहले की अपेक्षा घटिया रंग का प्रयोग करते हैं। खिलौनों पर वे दुधिया लगाते हैं और तब कच्चे रंग देते हैं। फलस्वरूप कुछ दिन बाद या तो रंग उड़ जाता है

या दुधिया छूटने लगता है। विदेशों में माँग कम होने का यह भी एक कारण है।

सबसे बड़ी कठिनाई है सरकार की इस उद्योग के प्रति उदासीनता। कोई भी उद्योग हो जबतक जनता अथवा सरकार से प्रोत्साहन न मिले तबतक वह पनप नहीं सकता। एक व्यवसायी सज्जनका मत है—'स्वराज्य के पहले इस उद्योगको ब्रिटिश सरकार काफी प्रोत्साहन देती थी, परन्तु पता नहीं जनतन्त्र सरकार क्यों इस ओर उदासीन है।' यहाँ किसी भी व्यवसायी के पास ऐसी कोई भी सूची नहीं मिली जिसमें खिलौने के चित्रादि बने हों और जिसे बाहर भेजकर उद्योग की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सके।

कारीगरों और रंगसाजों की मजदूरी इतनी कम है कि कठिनाई से वे अपनी जीविका उपार्जित करते हैं। कई कारीगर तो इस पुराने उद्योग को छोड़कर दूसरे कार्य अपना रहे हैं। ऐसे उदाहरण कम देखने को नहीं मिले कि कई कारीगर दिन भर रिक्शा चलाते हैं और शाम को खिलौने बनाते है।

कारीगर को ठीक समयपर नकद मजूरी नहीं मिल पाती जिससे वह लकड़ी आदि खरीद कर माल बना सके।

लकड़ी का भाव बहुत अधिक है। गूलर, घुरकुन, शीशम आदि का भाव ६ से १० रुपया मन तक है। रंग भी मँहगा ही है।

वैज्ञानिक साधनोंका अभाव है। जापान आदि में कुछ ऐसे खिलौने बने हैं जो स्वयं चालित होते हैं। बम्बई के औद्योगिक प्रदर्शनी में ऐसे खिलौने देखे जा सकते हैं।

यदि इस उद्योग को प्रोत्साहन न मिला तो २॥ हजार व्यक्ति बेकार हो जायंगे और इस सुन्दर कला का भी अन्त हो जायगा।

लंगड़ा आम

काशी में उत्पन्न और निर्मित होनेवाली उपहार की वस्तुओं में यहाँ का लंगड़ा आम भी एक विशिष्ट पदार्थ है। इसकी प्रतीक्षा ब्रिटिश सम्राट्तक करते

थे। इसके स्वाद से जितना प्रभावित रूस हुआ, उतना ही चकित चीन। अब तो इसके गूदे का पाउडर बनाकर और डिब्बों में बन्दकर विदेशों को भेजा जाने लगा है जहाँ इसकी माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है।

बम्बई को अपने अलफैंजोपर नाज है तो लखनऊ को अपने सफेदे और दशहरी पर। मालदह, फजली और मोहनभोग भी अपने स्थानों का नाम रोशन करते हैं, किन्तु वाराणसी का लंगड़ा इन सबसे स्वाद और सुगन्ध में निराला होता है। काशी से भारतवर्ष के विभिन्न केन्द्रों, राजाओं, सेठों और बड़े आदमियों तक यह पहुँचता है। इसका भोग लगाने के लिए सभी लालायित रहते हैं।

लंगड़ा खाने की भी विधि है—इसी से इस फल की महानता का परिचय मिलता है। लंगड़ा चूस-चूस कर नहीं खाया जाता। इसे चाकू से छील काट कर खाते हैं, बल्कि बरफी बनाते हैं। पन्ना बनाते हैं, दूध में मिलाकर खाते हैं।

गोला दीनानाथ

नगर के मध्य में स्थित बनारस का व्यावसायिक केन्द्र दीनानाथ का गोला उत्तरप्रदेश के प्रमुख किराना मण्डियों में अपना विशेष स्थान रखता है। क्षेत्र में तो छोटा अवश्य है परन्तु व्यापार में कानपुर का स्थान इसके बाद ही पड़ता है। कहा जाता है कि २०० वर्ष पूर्व इस बाजार का नाम विदेशों में भी था।

काशी के अन्य क्षेत्रों की भाँति इसका भी छोटा इतिहास है। राजा चेतसिंह के जमाने में इस गोले का महत्व बहुत अधिक था। कहा जाता है कि दीनानाथ नाम के मुंशी राजा चेतसिंह के खास परिचितोंमेंसे थे। जब चेतगंज उनके नाम से चला तो राजा ने दीनानाथ को यह गोला दे दिया। तभी से दीनानाथ का गोला इसका नामकरण हुआ। जब ईश्वरी मेमोरियल अस्पताल से बेनियातक सड़क निर्माण हेतु खोदाई हो रही थी तब उसमें एक बौद्ध प्रतिमा मिली। इस प्रतिमा को यहाँ के एक व्यवसायी गोले में ले आये और एक चबूतरा बनाकर 'श्री दीनानाथ का मन्दिर' का रूप दे दिया। आज भी यह मन्दिर गोले के मध्य में स्थित है।

१८वीं शताब्दीतक यह गोला मेवा आदिका प्रमुख विक्रय-केन्द्र था। सन् १९१४-१५ तक चीनी बिकने लगी। लोगोंने विभिन्न पदार्थों की मण्डी बनाने की चेष्टा की परन्तु किराना व्यवसाय के एकाधिकारपर व्यतिक्रम न होने पाया। इसका कारण था। काशीनरेश की यह इच्छा थी कि बनारस नगर में व्यवसायों की खिचड़ी बनने न पाये। एक वस्तुविशेष के लिए एक प्रमुख बाजार हो। इसीलिए नगर में हमें आज भी विशेष वस्तु के लिए विशेष बाजार कहीं-कहीं देखने को मिल जाते हैं और इस तरह कई सौ वर्ष पूर्व से ही इस गोलेकी प्रसिद्धि मसालों आदि की बिक्री में चली आ रही है। इस समय भी गोलेका रूप किराना व्यापारतक ही सीमित है। मसालों की कई श्रेणियाँ हैं। गरम, बतीसा (प्रसूता-वस्था के समय का) यूनानी, तम्बाकू और सुर्ती आदि सब मिलाकर लगभग

२००० प्रकार के मसाले यहाँ मिल सकते हैं। यद्यपि मेवा, रुई तथा अन्य माल भी बिकते हैं तथापि वातावरण मसालों की गन्ध से हमेशा परिपूर्ण रहता है।

व्यापार वस्तुओं का आयात

मसालों के लिए बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, अमृतसर प्रमुख मण्डियाँ हैं जहाँ से वस्तुएँ यहाँ आयात की जाती हैं। कुछ वस्तुएँ सीधे ही उत्पादन-स्थान से मँगा ली जाती हैं। इसकी तालिका इस प्रकार है—

यूनानी मसाला और दवा—इराक, ईरान, अफगानिस्तान, नेपाल और लखनऊ से।

मेवा—काबुल और अमृतसर से।

जीरा—गुजरात और जयपुर।

लाल मिर्चा—पानीपत, लाहौर, अमृतसर और पटना।

धनिया—मध्यभारत में गूना, रानीपुर, अहरौरा, बाढ़ (पटना जिला) बंगाल, आसाम और धुबड़ी।

चिरौंजी—रामपुर, बिलासपुर, झाँसी, ललितपुर और संभलपुर।

कालीमिर्च—एलप्पी, कर्नूल, कालीकट और मद्रास।

लौंग—जंजीबार और बम्बई।

बड़ी इलायची—दार्जिलिंग।

छोटी इलायची—विधु नगर।

चन्दन—मैसूर।

पीपर, जावित्री, दालचीनी—जावा, सुमात्रा और कलकत्ता।

सुर्ती आदि—अफ्रीका और कलकत्ता।

हल्दी—बेतिया, चम्पारन, छपरा और नेपाल।

विभाजन से पूर्व कराची बन्दरगाह इसके लिए प्रमुख केन्द्र था तथा मुल्तान, शिकारपुर और सक्खर से मसालों का आयात होता था। ६० लाख रुपयेकी वार्षिक आमद इस समय है।

खपत और निर्यात

बनारस में मसालों की वार्षिक खपत करीब ३५-३६ लाख रुपयेकी है। दूसरे शब्दों में यदि हम कहें तो बनारस जिले में प्रतिदिन मसालोंकी खपत लगभग १० हजार रुपये की है।

शेष माल उत्तरप्रदेश के पूर्वी क्षेत्र बलिया, आजमगढ़, गाजीपुर, जौनपुर, मीरजापुर आदि जिलों में निर्यात किया जाता है। इस तरह विशेषकर पूर्वी क्षेत्रकी दृष्टि से गोला दीनानाथ एक प्रमुख पूर्ति क्षेत्र है।

आढ़त और अढ़तिये

कुल मिलाकर आढ़त और दूकानोंकी संख्या ५६ हैं। वैसे दो प्रकार के व्यापारी मिलते हैं। एक तो वे जो कमीशन एजेण्ट हैं और दूसरे वे जो थोक व्यापारी हैं। पहले बटुक सिंह और भोपत साहु के दो आढ़त थे, पर अब रामभरोस माताप्रसाद, हीरालाल जगरनाथप्रसाद, मुकुंदीलाल महादेवप्रसाद, श्रीराम ओंकारमल, बहादुर सिंह रघुनन्दन सिंहकी प्रमुख आढ़त और दूकानें हैं। इन लोगों ने अपना संघटन बना लिया है और 'काशी किराना पंसारी कमेटी' के नाम से संस्था है जिसमें प्रतिसप्ताह मिलकर यहाँ के व्यापारी अपनी समस्याओं और कठिनाइयोंपर विचार करते हैं, परन्तु यह कहना होगा कि अभीतक अपने कर्तव्यों के प्रति ये जागरूक नहीं हैं।

पहले यहाँपर चार किस्मके तौल थे। मेवा का मन १ मन ११॥ सेरका, मसालेका मन १ मन ५। सेर और १ मन ३। सेरका तथा अन्य वस्तुओं का १ मनका मन माना जाता था। परन्तु अब सभी वस्तुओंकी तौल किलो के आधारपर होती है। इस तरह कुछ लाभ तो अवश्य हुआ परन्तु अन्य समस्याओं ने उसे सीमित भी कर दिया।

अन्य वर्षोंकी भाँति इस वर्ष व्यापार मन्दा जा रहा है इसका कारण बढ़ता हुआ भाव तथा 'कर' है। इसी वर्ष काली मिर्चपर कर अत्यधिक बढ़ा दिया गया है।

सुपाड़ीपर ८०) से ८२) प्रतिमन आयात कर लगा हुआ है। सरकार यह चाहती है कि देशमें ही मसालों की उत्पत्ति के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध हों और विदेशी आयात धीरे-धीरे बन्द हो, परन्तु अभी इसके लिए ऐसा वातावरण उपस्थित करना है ताकि भविष्य में आयात न हो सके इसलिए कुछ दशाओं में ठीक नहीं है। अगली पंचवर्षीय योजना में इसके लिए पर्याप्त संरक्षण की आवश्यकता है।

अभी ५० वर्ष पूर्व ही इस क्षेत्र में पहलवानी का जोर था। शरीर की गठन आदि में आज भी भारत में उनके जोड़ के कुछ ही मिल सकेंगे। गोपाली, रघुनन्दन सिंह, मथुरा आदि प्रसिद्ध पहलवान यहीं के थे। गोले के सामने ही श्रीरामनिवास में एक बहुत बड़ा दंगल होता था। वहीं अखाड़ा भी था और बनारसी पहलवानोंकी जोड़ी बँधती थी। यहीं मगन साहुने गुलाम पहलवान को पछाड़ा था।

काशी में इस व्यापार के विकास के लिए अभीतक अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं बन पायी हैं। पहली समस्या चुंगी व्यवस्था के अन्तर्गत है। सभी व्यापारियों ने एक मत से कहा कि चुंगी यहाँ बहुत अधिक लेते हैं। ३ पैसा प्रतिरुपया चुंगी है जो यहाँ के व्यवसाय के लिए अन्य नगरों और मण्डियों की अपेक्षा अधिक ली जाती है। यदि यही व्यवस्था प्रतिमन तौलपर हो तो पर्याप्त संरक्षण मिल जायगा।

दूसरी समस्या मिलावट के संबंध में है। सरकार ने मिलावट की जांच के लिए विशेष इन्स्पेक्टर को नियुक्त कर रखा है जिससे यहाँ के व्यापारी निर्दोष होकर भी परेशान होते हैं। वस्तुतः मिलावट उत्पादनस्थल और प्रमुख मण्डियों में ही होती है, जहाँ जाँच अवश्य होती है परन्तु भ्रष्टाचार आदि के कारण वह दोष यहाँ के व्यापारियों के मत्थे पड़ता है। सरकार स्वयं इसके लिए उत्तरदायी है। पहले साबूदाना सिंगापुर से आता था जो असली भी था परन्तु हाल में ही मद्रास में एक कारखाना स्थापित हुआ है जहाँपर साबूदाने में सैगो नामक पदार्थ मिला दिया जाता है जो जनजीवन के लिए हानिकारक है। इस मिलावट के उत्तरदायी यहाँ के व्यापारी तो नहीं हो सकते?

तीसरी समस्या यातायात की है। माल बहुत देर में पहुँचता है। जिस मालको १० दिन में पहुँचना चाहिये, वह १-१॥ महीने में पहुँचता है जिससे व्यापारियों को काफी नुकसान का सामना करना पड़ता है। मजा यह कि यदि माल कहने-सुननेपर जल्दी आ भी जाता है तो मुगलसराय में आकर १ महीने के लिए रुक जाता है। डीमरेज के सम्बन्ध में पता चला कि माल आ जाता है परन्तु रेलवे अधिकारियों को इसका पता नहीं रहता है और जब इसकी सूचना दी जाती है तो वे पुनः जागकर पुराना डीमरेज भी ले लेते हैं।

वाराणसी के बंक

काशी में इस समय निम्नलिखित बंक हैं—

१. स्टेट बंक आफ इण्डिया। २. इलाहाबाद बंक लिमिटेड। ३. सेण्ट्रल बंक आफ इण्डिया लिमिटेड। ४. पंजाब नेशनल बंक लिमिटेड। ५. बंक आफ विहार लिमिटेड। ६. हिन्दुस्तान कमर्शियल बंक लिमिटेड। ७. यूनाइटेड कमर्शियल बंक लिमिटेड। ८. यू० पी० कोआपरेटिव बंक लिमिटेड। ९. यूनाइटेड बंक आफ इण्डिया लिमिटेड। १०. बनारस स्टेट बंक लिमिटेड। ११. बंक आफ इण्डिया लिमिटेड।

इनमें से स्टेट बंक, इलाहाबाद बंक, सेण्ट्रल बंक, यूनाइटेड बंक आफ इण्डिया और यूनाइटेड कमर्शियल बंक लिमिटेड को रिजर्व बंक की मार्फत विदेशी विनिमय की सुविधा प्राप्त है।

यहाँ केवल बनारस स्टेट बंक में सेफवाल है।

होटल

१. क्लार्क होटल, वाराणसी कैंट में है। यह होटल शीत-ताप नियन्त्रित (एयर कण्डीशन) है। इसमें सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अधिकांश विदेशी यात्री यहीं ठहरते हैं।

२. होटल डी पेरिस, वाराणसी कैंट में है। यह एयर कंडिशन नहीं है पर यहाँ भी और सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ भी विदेशी यात्री ठहरते हैं।

३. बनारस लाज—यह होटल शहर के मध्य में गंगाजी के निकट दशाश्वमेध रोड पर स्थित है। यहाँ का वातावरण बहुत ही शिष्ट है। क्लबों और संस्थाओं की बैठकें अक्सर यहीं होती हैं। इसकी एक विशेषता यह है कि यहाँ भोजन में शुद्ध घी का सामान मिलता है जो कि इस वनस्पति तेल के युग में निश्चय ही उल्लेखनीय है।

४. सेण्ट्रल होटल—बनारस लाज से १५-२० कदम आगे यह होटल पड़ता है। इसमें भी ठहरने और खाने की उत्तम व्यवस्था है।

दशाश्वमेध बोर्डिंग—यह अपने नाम के अनुकूल ही स्थान पर स्थित है। इसमें मुख्यतः बंगाली यात्री ठहरते हैं।

५. ग्रांड होटल—बुलानाला। ६. कालिटी होटल—हौज कटोरा।

क्लब

काशीके इस मस्त जीवनमें क्लबोंका भी स्थान है। यों तों क्लब यहाँ कई हैं पर इनमें प्रमुख है रोटरी क्लब, बनारस क्लब और पी० एन० यू० क्लब।

रोटरी क्लब

रोटरी क्लबकी स्थापना यहाँ सन् १९४६ में हुई थी और इसकी पहली बैठक विश्वविद्यालयमें हुई थी। डाक्टर बूलचन्द इसके प्रथम मन्त्री बनाये गये।

यह अन्तरराष्ट्रीय क्लब है। संसारमें सबसे प्रथम रोटरी क्लब शिकागोमें २३ फरवरी सन् १९०५में स्थापित हुआ था। इसकी सदस्यता का नियम यह है कि भिन्न-भिन्न व्यवसायका सिर्फ एक व्यक्ति ही इसका सदस्य हो सकता है। शुरू शुरूमें इसकी बैठकें सदस्योंके घरोंमें बारी-बारीसे होती थीं। इससे इसका नाम रोटरी पड़ा। यह क्लब अब काफी विकसित हो गया है।

इस समय इसका विस्तार ९२ देशोंमें है। समस्त रोटरी क्लबोंकी संख्या ९२८६ तथा इसके सदस्योंकी संख्या ४३९०० है। रोटरी क्लबका उद्देश्य है हर पेशेवालोंमें आपसमें भ्रातृत्वभावकी वृद्धि करना तथा मनुष्यमात्रकी सेवा करना।

काशीके रोटरी क्लबके वर्तमान मन्त्री हैं सरदार जगत सिंह। इसके भूतपूर्व मन्त्री हैं राजा प्रियानन्द, [illegible] चौधरी, आनन्दप्रसाद अग्रवाल, कुँवर कृष्णानन्द-

प्रसाद, युगलकिशोर कपूर और वालकरामजी। महामहिम श्री श्रीप्रकाशजी इसके संस्थापक सदस्य हैं।

भारतमें काशीका ही रोटरी क्लब ऐसा है जिसके पास अपना भवन तथा अन्य सामान है।

वनारस क्लव

वनारस क्लवको कहा जा सकता है कि यह अफसरोंका क्लव है। अभी थोड़े दिन पहलेतक इसके मेम्बर सिवाय सरकारी उच्च अधिकारियोंके दूसरे लोग नहीं हो सकते थे किन्तु अव ऐसा नहीं है। किन्तु एक विशेषता अव भी है। इसके मेम्बर सपत्नीक ही हो सकते हैं। इसमें हर तरहके खेल जैसे विलियार्ड, टेनिस, बैडमिंटन वगैरह खेले जाते हैं।

पी० एन० यू० क्लव

प्रभुनारायण क्लव स्वर्गीय काशीनरेश महाराजा प्रभुनारायणके नामपर स्थापित है। यह क्लव वनारस छावनीमें स्थित है और इसके मेम्बर हर तबकेके लोग निर्धारित फीस देकर हो सकते हैं। इसमें भी विलियार्ड, टेनिस, बेडमिंटन, ब्रिज वगैरहके खेल होते हैं। इस समय काशीके समस्त क्लबोंमें इसी क्लबकी सदस्य संख्या सबसे अधिक है।

धर्मशालाएं

१. श्रीकृष्ण धर्मशाला, वाराणसी कैण्ट स्टेशन के पास। २. जीतमल गिरधारीलाल की धर्मशाला, काशी स्टेशन के पास। ३. विश्वेश्वर पांडेय धर्मशाला। ४. लक्खी धर्मशाला। ५. हरसुन्दरी धर्मशाला। ६. कमलादेवी बुधिया धर्मशाला। ७. सिन्धी धर्मशाला। ८. बागला धर्मशाला। ९. रायबटुकप्रसाद खत्री धर्मशाला। १०. बेतिया धर्मशाला। ११. पेशावरी धर्मशाला। ये सभी धर्मशालाएं गोदौलिया और दशाश्वमेधके निकट हैं। १२. राधाकृष्ण शिवदत्तराम धर्मशाला, ज्ञानवापी। १३. लखनौआ धर्मशाला, बुलानाला। १४. गेवाबाई धर्मशाला, मैदागिन। १५. दिल्लीवाले की धर्मशाला। १६. बृन्दावन धर्मशाला, गढ़वासी टोला। १७. अयोध्या धर्मशाला। १८. सेवासदन धर्मशाला। १९. बीबी

धर्मशाला। २०. लच्छीराम धर्मशाला—यह सुखलालसिंह के फाटक में है। २१. धानीदेई धर्मशाला। २२. बीथू सिंह धर्मशाला, ब्रह्मनाल। २३. ठाकुरदास सुरेका धर्मशाला, ब्रह्मनाल (मणिकर्णिका)। २४. बड़े दीवान बाबू ताराचन्द का बाड़ा, बुलानाला (सड़कपर)। २५. सत्यनारायण धर्मशाला, बांसफाटक (सत्यनारायण मन्दिर के सामने)। २६. बरनवाल धर्मशाला। २७. कौरिया (कोढ़िया) धर्मशाला, लक्सा सड़कपर। २८. कान्यकुब्ज धर्मशाला, कोतवालपुरा बांसफाटक। २९. सादी धर्मशाला। ३०. माहेश्वरी धर्मशाला कर्णघण्टा। ३१. बत वीर धर्मशाला। ३२. हलवाई धर्मशाला, लोहटिया। ३३. चौधरी धर्मशाला, मछोदरी (चौधरी तेल मिल के पीछे)। ३४. जैन धर्मशाला, भेलूपुर (महाराज विजयानगरम् कोठी के पास। ३५. टिवड़ेवाले की धर्मशाला, लक्सा सड़कपर केवल ब्याहादि के लिए। ३६. डालमियां धर्मशाला, बुलानाला। ३७. बबुआ पांडेयकी धर्मशाला, पांडेयघाट।

मणिकर्णिकाघाटपर बीमार और शव लानेवालोंके लिए निम्नलिखित धर्मशालाएं हैं—

१. गंगालाभ भवन—यह धर्मशाला सूरजमल नागरमल फर्म कलकत्ते की है। इसमें शव और बीमार आदमियोंको लानेवाले यात्रियों को लालटेन आदि गृहस्थी के प्रायः सभी उपयोगी सामान निःशुल्क देनेकी व्यवस्था है।

२. विश्राम भवन—यह राजा बिड़ला द्वारा बनवाया गया है। शवदाह करनेवाले यात्री इसमें कुछ देरतक विश्राम करते हैं।

३—एक धर्मशाला नगरपालिका द्वारा बनवायी गयी है।

पंचक्रोशी की धर्मशालाएं

नगर के बाहर पंचक्रोशीके पांचों तीर्थोंपर रानी अहल्याबाई, रानी भवानी, राजा बिड़ला तथा अन्यान्य धर्मशील महानुभावोंकी अनेक धर्मशालाएं हैं जिनकी कुल संख्या २०-२५ के लगभग है।

राजा बिड़लाकी प्रसिद्ध धर्मशाला सारनाथ में है।

अखाड़े और व्यायामशालाएँ

साहित्य और संस्कृति की तरह काशी के अखाड़ों और व्यायामशालाओं की परम्परा भी काफी प्राचीन है। भस्मविभूषित भगवान् शंकर की इस नगरी के निवासी चिरन्तन सत्य भस्म के महत्त्व को समझते थे अतः राजा से लेकर रंक तक सभी ने 'धूर' को अपना आभूषण बना लिया था और गमछा तथा लंगोटा उनकी खास पोशाक थी। इसी धूर में लोटपोट कर उनकी काया कञ्चन हो जाती थी और रोग-व्याधि आजीवन निकट नहीं पहुँचती थी। किन्तु जबसे काशी के युवकोंपर 'धूर लगाने' की जगह 'आवारा' फैशन का भूत सवार हुआ और मिट्टी का तिरस्कार होने लगा तब से उनकी काया भी सिट्ठी होने लगी।

यद्यपि काशी की कुश्ती कला का प्राचीन इतिहास तो उपलब्ध नहीं है फिर भी यहाँ आज भी ऐसे अखाड़े हैं जिनकी स्थापना आज से २—२॥ सौ वर्ष पूर्व हुई थी। इनमें सन्तराम, नागनाथ, अधीन सिंह और भंगड़ भिक्षुके अखाड़े सबसे प्राचीन हैं। इनमें से प्रथम दो अखाड़े तो मणिकर्णिका घाटपर, तीसरा ईश्वरगंगीपर और चौथा ऐतरनी बैतरनीपर है।

सन्तराम के अखाड़े के बख्तावर गिरि और फतेहशंकर उर्फ दुद्धी महाराज और भंगड़ भिक्षुके अखाड़े के शिवनाथ सिंह और बहादुर सिंह काफी प्रसिद्ध पहलवान और वीर पुरुष हो चुके हैं। कहा जाता है कि बख्तावर गिरि के भुजदण्ड का ऊपरी भाग १६ अंगुल चौड़ा था। दुद्धी महाराज एक साथ ५ नारियल फोड़ देते थे। बताया जाता है कि गुलाम पहलवान से इनकी कुश्ती ११ दिन तक हुई किन्तु वह इनका बाल भी बाँका न कर सका। गिरिजी की कृपा से इन्होंने कुम्भक प्राणायाम सिद्ध कर लिया था जिससे ये कुश्ती में कभी थकते ही न थे। शिवनाथ सिंह और बहादुर सिंह भंगड़ भिक्षुके शिष्य तथा राजा चेतसिंह के समर्थक थे। इन्होंने मिर्जा पाँचू के ५ सौ सिपाहियों को तलवार के घाट उतार दिया था और स्वयं रण में वीरगति को प्राप्त हुए थे।

उपर्युक्त चारों अखाड़ों के बाद रामकुण्ड और कोणभट्ट के अखाड़ों का नम्बर आता है जो लगभग १। सौ वर्ष पुराने हैं। कोणभट्ट दक्षिण से यहाँ आये थे। इन्होंने मल्लखम्भ का दूर-दूर तक प्रचार किया था। बीबीहटिया के पास स्थित इनका अखाड़ा आज भी मल्लखम्भ के लिए देश-प्रसिद्ध है।

इसके बाद घुघरानी गली स्थित जग्गू सेठ के अखाड़े का नम्बर आता है जिसकी स्थापना आज से लगभग ७४ वर्ष पूर्व मीरघाट के प्रतिष्ठित नागरिक श्री जग्गू सेठ ने की थी। इस अखाड़े से भवानीशंकर वाजपेयी, वाहिद, मोतूसिंह आदि कई प्रमुख पहलवान निकल चुके हैं जिन्होंने आगे चलकर अपने-अपने पृथक् अखाड़ों की स्थापना की। इस प्रकार नगर में अखाड़ों तथा कुश्ती कला के विकास में इस अखाड़े ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

नगर के आधुनिक अखाड़ों में पण्डाजी का अखाड़ा (बाँसफाटक), रामसिंह और शकूर खलीफा के अखाड़े (दोनों बेनियाबाग में), नन्दासिंह स्वामीनाथ (अस्सी) और बबुवापांडे का अखाड़ा प्रमुख है जिनमें आज भी नगर के उभड़ते पहलवान और अन्य युवक जोर करते हैं। इन अखाड़ों से नत्था, चाँदी, गुँगई, सर्वजीत, साधो और श्रीपत आदि कई अच्छे पहलवान निकल चुके हैं।

इनके अतिरिक्त नगर में छोटे-बड़े अन्य सैकड़ों अखाड़े हैं जिनमें आजकल भी लोग कुश्ती लड़ते हैं किन्तु आधुनिक फैशन के प्रचार के कारण इन अखाड़ों की लोकप्रियता धीरे-धीरे कम होती जा रही है और उनका स्थान व्यायामशालाएँ तथा क्लब लेते जा रहे हैं जहाँ परम्परागत व्यायामों के साथ ही आधुनिक पाश्चात्य व्यायामों की भी शिक्षा दी जाती है। आज के शिक्षित युवक अखाड़ों की अपेक्षा इन व्यायामशालाओं को अधिक पसन्द करते हैं।

व्यायामशालाएँ

नगर की वर्तमान व्यायामशालाओं में मिश्रपोखरा स्थित हेल्थ इम्प्रूविंग असोसिएशन सबसे पुराना है।

नगर की दूसरी व्यायामशाला काशी व्यायामशाला है जिसकी स्थापना लगभग २४ वर्ष पूर्व हुई थी। यह स्थान व्यायाम करने का एक प्रमुख केन्द्र है।

मल्लखम्भ, लाठी, लेजिम, जोड़ी, पैरल्लवार आदि की शिक्षा के साथ ही यहाँ व्यायाम के शिक्षकों को भी प्रशिक्षा दी जाती है और इसके प्रमाणपत्रों को उत्तर-प्रदेशीय सरकार की मान्यता प्राप्त है। इसके संचालक श्री सत्यनारायण शर्मा हैं।

मिश्रपोखरा स्थित जयभारत व्यायामशाला यद्यपि अपेक्षाकृत नयी व्यायाम-शाला है, जिसकी स्थापना लगभग ७ वर्ष पूर्व हुई थी, किन्तु इस अल्प अवधि में इसने आशातीत प्रगति की है और आज नगरकी सर्वश्रेष्ठ व्यायामशाला है जिसमें आसन, कुश्ती, मल्लखम्भ, फ्री हैण्ड, पैरल्लवार, वारवेल, मसल कण्ट्रोलिंग, वैलेंसिंग, आक्रोवेट आदि प्राचीन तथा आधुनिक व्यायामों के अतिरिक्त कबड्डी, वालीवाल, वैडमिण्टन, क्रिकेट और फुटवाल आदि भारतीय और पाश्चात्य सामूहिक खेलों तथा स्पोर्ट्‌स, विविध खेलकूद और तैराकी की भी शिक्षा दी जाती है।

काशी के जनकवि

वाराणसी और मीरजापुर में कजलियों का प्रचार बहुत दिनों से चला आ रहा है। कजलियों में काशी के उन जनकवियों की प्रतिभा की झांकी मिलती है जिन्होंने उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त की है और अपना सारा ज्ञान एवं अनुभव अपने समय के लोकजीवन एवं श्रुत विद्या से प्राप्त किया है। इन लोकगीतों में यदि एक ओर कबीर जैसे निर्गुणपंथी सन्त के दिव्यानुभव और भक्तिभाव की झांकी मिलती है तो दूसरी ओर जनजीवन के सुख-दुःख, आशा-आकांक्षाओं, उत्सव-उल्लास और रोजकी समस्याओं का भी आर्थिक आख्यान मिलता है। काशी के मुख्य कवियों में कालक्रम से बिहारी, भैरव, अवतार, झिंगई और मारकण्डे उल्लेखनीय हैं।

काशी के जनकवियों में बिरहा को अश्लीलता से मुक्त कर जनजीवन और राष्ट्र की नयी समस्याओं तथा निर्गुण प्रेम से संकलित करनेवाले आशुकवि बिहारी का प्रमुख स्थान है। उनका जन्म सन् '५७ में औड़िहार के पास गोपालपुर गाँव में हुआ था। आठ वर्षकी अवस्था से ही नौकरी की खोज में काशी आकर वे लोहटिया में बस गये। सीरकटैया में उन्होंने विवाह सम्बन्ध किया। वे जाति के अहीर थे। उनका पेशा पेशराजी था। प्रतिदिन सायंकाल लक्ष्मीकुण्ड पर वह स्वामी शिवानन्द की महाभारत, भागवत्, रामायण आदि की कथाएँ सुना करते थे। इन कथाओं से उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली। कहते हैं कि उन्होंने ४ लाख पद लिखे हैं। उनके बिरहे समस्त हिन्दी भाषाभाषी प्रांतों में प्रचलित हैं। उनके १२ हजार शिष्यों में पत्तू, गनेश, सरजू, विश्राम, विश्वनाथ, रम्मन, महावीर, सुकिल और अक्कू आदि एक हजार शिष्य तो बिरहा के प्रमुख गीतकार हैं। ७० वर्ष की उम्र में उनका निधन भी काशी में ही हुआ। उनके समय का दूसरा प्रसिद्ध जनकवि केवलापुर निवासी अवतार था। कहते हैं कि उसने बिहारी को एक बार दंगल में पछाड़ दिया था।

कजली में भैरव का नाम सुप्रसिद्ध है। वह अपने समय का मशहूर घड़ीसाज था। अर्दलीबाजार में उसकी दुकान थी। कजलियों में उसने सैकड़ों तर्जें निकालीं। उसके शिष्योंकी एक लंबी परंपरा है। शिष्योंका विश्वास है कि भैरव सिद्ध योगी था। जो भी हो उसकी निर्गुण कजलियाँ तो बेजोड़ हैं। कहते हैं कि मृत्यु के समय उसने कागजपर लिखायी गयी अपनी सभी रचनाएं गंगा में प्रवाहित कर दीं किन्तु अभी उसकी सैकड़ों रचनाएं सुलभ हैं। द्वारिकाप्रसाद उपनाम झिंगई उसके प्रमुख शिष्य थे।

झिंगई पानकी दूकान करते थे और काशी नगरपालिका में स्टाम्प बेचा करते थे। उन्होंने अपनी कजलियों में अपने गुरु भैरवकी निर्गुण भक्तिकी भावनाको नया रूप और नया सौन्दर्य प्रदान किया। कभी-कभी उनकी कजलियां उच्चकोटि के भजनका रूप ले लेती हैं। उनकी श्रृंगारपरक रचनाओं में भी आध्यात्मिक तत्त्व निहित है। उन्होंने कजलियों में कुछ सुंदर चित्रबंध भी दिये थे।

शायर मारकण्डे हाल के जनकवियों में प्रमुख हैं। समय समयपर उठनेवाली सामाजिक समस्याओं और प्रवृत्तियोंपर बड़ी व्यंग्यपूर्ण छोटी-छोटी कजलियां लिखते थे। इनकी भाषा भोजपुरी और खड़ी बोली के मिश्रण से बाजारू हो गयी थी। कजली के दंगलों में इनकी बड़ी धाक थी।

अब कव्वाल अधिक हो गये हैं। जनता भी कव्वाली पसन्द करती है। ●

काशी के मेले-तमाशे

संस्कृति और धर्मप्राण वाराणसीके वक्षमें जहाँ व्रत, नियम, तपोपवासकी मंदाकिनी प्रवाहित है वहाँ नीरस जीवन में सतत सरसताका संचार करनेवाली मेले तमाशों की कल-कल कावेरी भी तरंगित होती रहती है। यों तो उत्तरप्रदेश-भर में मेले-तमाशे अपने किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं परन्तु तीन लोक से न्यारी नगरी काशी में झूले की प्रथा-परम्परा भी नित्य नयी और अपनी शैली की अद्भुत-अनुपम है।

हेमन्त के अनन्तर फाल्गुन के आरम्भ में फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी को 'महा-शिवरात्रि' का पर्व मनाया जाता है। यों तो प्रतिमास की कृष्ण चतुर्दशी शिवरात्रिके नामसे संबोधित है किंतु इस महारात्रि के चार प्रहरका पूजन, प्रातः-काल से झोली में फूल अक्षत लेकर शिवमन्दिरों में यत्रतत्र दर्शन-पूजनवाली नर-नारियोंकी टोलियाँ उमड़ पड़ती हैं। इसके ठीक एक पखवारे बाद होली होती है—

होली—इसमें होलिकादहन, अबीरगायन, अबीरमर्दन के साथ स्वांग, साहित्यिक भड़ौओं का नृत्य चलता है। इसीके पीछे जुड़ा प्रसिद्ध मेला बुढ़वा-मंगल था।

दशहरा—ज्येष्ठ शुक्ल १० को प्रातःकाल स्नान आदि होता ही है, अपराह्न में चार बजेसे ही भंगके रंग और गंग की तरंग में गोते लगाने लगते हैं। दशा-श्वमेधपर तैराकी दंगल भी दर्शनीय है।

रथयात्रा—आषाढ़ द्वितीया से चतुर्थीतक सिगरापर अपार भीड़ जगन्नाथ-जी के दर्शन को जाती है और मेले का रस लेती है।

नागपंचमी—तरुणों एवं व्यायामशील लोगों का खास मेला है। प्रत्येक अखाड़े में कुश्ती, मुद्गर, नाल, गदा की प्रतियोगिता एवं पुरस्कारकी धूम—'छोटे गुरुका, बड़े गुरुका नाग लो भाई नाग लो' की कर्णभेदी पुकार। नाग-

कूपपर पण्डितों का शास्त्रार्थ भी दर्शनीय होता है जो अपराह्न समयमें होता है। इसी श्रावण मासमें—

रक्षाबंधन—श्रावणीका पर्व है और राखी बांधने का बहनों का त्योहार। इसी मास में दुर्गाजी का और सारनाथ का मेला सोमवार और मंगलवार को होता है।

झूला—एकादशी से श्रावण शुक्ल पूर्णिमातक चलता है जिसमें मैदागिन चौमुहानी से लेकर सत्यनारायण मन्दिर चौकतक नित्य नये-नये रंग बिरंगे झूलों के दर्शनार्थ शाम ७ बजे से रात १२ बजेतक नरनारियों का खासा मेला रहता है। भादों सुदी छठ—

लोलार्क षष्ठी—को लोलार्क कुण्ड के स्नानके साथ अस्सीपर कीनाराम बाबा के स्थलमें नृत्य गीतका अपूर्व समा देखते ही बनता है। इसी के बाद क्वार बदी अष्टमीको—

महालक्ष्मी अष्टमी—का मेला लक्ष्मीकुण्डपर होता है। यों तो सोलह दिन पूर्व से ही यह मेला आरम्भ हो जाता है, किन्तु अन्तिम दिन ही इसका महत्व होता है। अनन्त चतुर्दशी को धार्मिक विधान के अनन्तर रामनगर रामलीला की ओर लोग मुड़ जाते हैं। वहाँ क्षीरसागर की झाँकी का आनन्द ले लोटा सोटा-अगौछासे लैस फाँकेमस्त लोग और एक्का, टमटम, रिक्शे, मोटरोंपर हैसियतके प्रतीक सभी वर्ग के लोग उस दिन जाते-आते हैं। आश्विन कृष्ण अष्टमी गिरि सुमेरकी झाँकी के लिए उतनी ही प्रसिद्ध है जितनी अनन्त चतुर्दशी। इस अष्टमी को चित्रकूट रामलीला की स्थानीय चौकाघाट मुहल्ले में गिरि सुमेर की झाँकी ठीक ११ बजे रात को आरम्भ होती है। झाँकी का ऐसा आनन्द काशीकी अन्य रामलीला में नहीं आता।

विजया दशमी—आश्विन शुक्ल दशमी को दशाश्वमेध घाटपर लाखों की संख्या में जनता भसान का मेला देखने टूट पड़ती है। यहाँ दुर्गाकी कात्तिकाकी मूर्तियाँ पूजनोपरांत बाजेके साथ लायी जाकर गंगामें प्रवाहित की जाती हैं। उसी प्रकार रामनगरकी काशीराजकी सवारी भी प्रसिद्ध है। वहाँ भी मेला लगता है।

आश्विन शुक्ल एकादशी वर्ष भर की समस्त एकादशियों में इसलिए चिरस्मरणीय है कि—

भरतमिलाप—अर्थात अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त काशीका भरत मिलाप—चित्रकूट रामलीला का भरत मिलाप—काशी की जनता का भरत-मिलाप इसी दिन होता है। नाटी इमली से लेकर बड़े गणेशतक नरमुंडों के अतिरिक्त और कुछ नहीं दीख पड़ता है। मकानोंपर जिधर नजर पड़ती है सिवा नारियों बालकोंके झुंड के और कुछ नहीं नजर आता। इसी से इस मेलेका नाम लक्खी मेला है।

धनतेरस—से लेकर अमावस्या दीपावली-पर्यन्त तीन-दिनोंतक काशी का ठठेरीबाजार आगतपतिका नायिकाकी तरह सजा रहता है। व्यापार हाटकी छटा अद्भुत होती है। चौदस को हनुमज्जयन्ती एवं काली चौदस की चहल पहल और दीपमालिका को गणेश लक्ष्मी के आवाहन पूजन के साथ दीपमालिका, लौकी पटाकाबाजी बनारसी लोगों की अपनी विशेषता होती है। उसी प्रकार अन्नकूट के दिन गोपालमन्दिर के अतिरिक्त विश्वनाथ अन्नपूर्णामें खासी भीड़ हो जाया करती है। भैयादूजको टीकों का थाल सजाकर बहिनों की मंगलयात्रा भाइयों का भोजन कालिंदी और सूर्यतनय के भ्रातृप्रेमका प्रतीक हो जाता है। अगहन वदी अष्टमी को भैरवाष्टमी की भीड़ भी अपना सानी नहीं रखती। यह मेला अपने आप चारों दिशा में फैला हुआ है। अष्टभैरव हैं। आठों स्थानोंपर दर्शन मेला, भीड़-भाड़ लगी रहती है।

मकरसंक्रांति—का तो कहना ही क्या है? जिसके सम्बन्ध में बचपन से लोग सुनते कहते आये हैं—'ईद बकरीद शबेरात भारी, सब तेवहारों में खिचड़वार भारी।' माघ कृष्णा चतुर्थी को गणेश चौथ का मेला भी उसी प्रकार का होता है।

वसन्त पंचमी—नवान्नस्येष्टि की आधारभूत है। इस दिन जवकी नयी बालको ग्रहण करने, सरस्वतीपूजन करने, वसन्ती वस्त्र धारण करने एवं वसन्ती ठंढाई की गहराई में डुबकी लगाने की परम्परा है।

रंगभरी एकादशी—फाल्गुन शुक्ल एकादशी रंगभरी के नाम से सम्बोधित है। इस दिन काशी विश्वनाथ के अनुपम श्रृंगार के दर्शन का ऐसा झमेला है जो कभी किसी पर्व, मेलेपर नहीं होता। इस दिन स्थानीय लोगों के अतिरिक्त चकिया, जौनपुर, मीरजापुर, बड़ागाँवतक के लोग नियमपूर्वक इस मेले में भाग लेते हैं।

चौसट्ठी यात्रा—होली के उपरान्त धूलिवन्दन धुरड्डी के दिन रगरोरी से छुटकारा पा, विजया के रंग में डूबकर साफ सुथरे कपड़ों से लैस होकर लोग चौसट्ठीदेवी के दर्शन को जाते हैं।

इन वार्षिक मेलों के साथ लगातार एक महीना-बीस दिन का मेला होता है—काशी की भारत-प्रसिद्ध रामलीलाएँ, जिन में रामनगर की प्रमुख लीलाओं में क्षीरसागर की झाँकी, फुलवारी, धनुष यज्ञ, भरत मनावन, लंका-दहन, अंगद विस्तार, लक्ष्मण शक्ती, दशमी, भरतमिलाप, राजतिलक एवं सनकादि मिलन हैं।

छीरसागर की झाँकी—लक्सा, तुलसीदास की रामलीला, काशीपुरा की भी प्रसिद्ध है।

फुलवारी धनुभंग—लक्सा, चेतगंज, काशीपुरा, भुलेटन, दारानगर, राजमन्दिर, भोजूबीर आदि लीलाओं के बढ़िया होते हैं। यहाँ अच्छा मेला होता है।

नक्कटैया—चेतगंज की सबसे मशहूर होती है। साधारणतः कई झाँकियाँ निकलती हैं।

भरतमिलाप—गोपीगंज का, लक्साका एवं चित्रकूट का तो प्रसिद्ध है ही।

इस प्रकार सक्षेप में काशी के मेलों का झमेला समाप्त हो जाता है जो संकेत-मात्र कहा जा सकता है। अन्यथा एक एक मेलेपर एक-एक पृथक-पृथक लेख ही सम्भव है। ●

बहरी अलंग और साफा-पानी

अड्बंगी भोलेकी नगरीके सम्बन्धमें सारी जानकारी तबतक अधूरी रह जायगी तबतक यह न जाना जाय कि यहाँके निवासी, उनके प्रतिनिधि या गण, किस प्रकार अपने जीवनमें मौज-मस्तीकी सृष्टि करते हैं। काशीके नागरिक, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, एक अजीब मस्ती लिये रहते हैं। यद्यपि आजके विज्ञान-युगमें मन-बहलावके अनेक साधन मौजूद हैं किन्तु काशी-वासियोंमें मन-बहलावका जो विचित्र ढंग है वह अधिक वैज्ञानिक, स्वास्थ्यप्रद और उन्नत है।

आप देखेंगे कि शामको ४-५ बजे कुछ लोग बनारसी एक्कोंपर, जिन्हें प्रायः गहरेबाज एक्के कहते हैं और जिनकी विशेषता होती है अपनी चाल-ढालकी, सजाव-शृंगारकी, सवार हो नगरके जनाकीर्ण वातावरण से दूर नगर के बाहर किसी तालाब या कुएँपर डट जाते हैं। साथमें भांग-बूटी, ठंडई आदिका पूरा सामान रहता है। तालाबपर एक्का खुल जाता है, सिलपर लोढ़िया खटकने लगती है और विजयाकी तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। कोई बादाम तोड़ता है तो कोई भांग धोता है। मर्जी मुताबिक कभी केसरिया, कभी दूधिया बूटी तैयार की जाती है। मौसमके अनुसार कभी सन्तरेमें, कभी कसेरूमें, कभी आमके पन्नेमें, कभी केसरमें, कभी मलाईमें, भांग छनती है। गुलकंद, गुलाब या केवड़ाजल, इलायची, काली मिर्च, बादाम, ठंडई तो बूटीकी संगिनी होती ही हैं। कुछ लोग बूटी बांटनेमें व्यस्त रहते हैं तो कुछ लोग तालाबके किनारे या पक्के कुएँकी जगतपर अपने कपड़ोंमें साबुन लगाने-नहानेमें व्यस्त रहते हैं। राजातालाबपर, रामनगर, सारनाथ और दुर्गाजी तथा संकटमोचनके मेलेके अवसरोंपर विशेष चहल-पहल रहती है। नित्य ही पचीस-पचास जवानोंकी टोलियाँ इस प्रकारके विभिन्न मन-बहलावों और सैर-सपाटेका आनन्द लूटती हैं। इन मेलोंके अवसरोंपर तो वहीं भोजनकी व्यवस्था भी की जाती है। भांग-बूटीके बाद, दाल बाटी, चूरमाकी बहार भी रहती है। बहरी अलंगमें अपने हाथसे गोहरेपर और हड़ियोंमें बनाकर खानेका जो आनन्द बनारस

वाले उठाते हैं उसको दूरसे देखनेवाले नहीं समझ सकते। यद्यपि 'पिकनिक' को विदेशी सभ्यतावाले भी जानते हैं और आनंद उठाते हैं,

बरसातमें यहाँके लोग पासके विंध्यके पहाड़ी स्थानों जैसे, चुनार, दुर्गाखोह, विंढम मेमोरियल, टांडा, विन्ध्याचल और अष्टभुजी तथा लतीफशाह और सिद्धनाथके झरनोंतक चले जाते हैं और वहाँके झरनोंका आनन्द उठाते हैं। चुनारसे चुर्कतक नयी रेल लाइन बन जानेसे सिद्धनाथ के झरनेतक जाना अब आसान हो गया है। प्रकृतिके प्रति बनारसवालों का यह प्रेम परम्परागत है; किन्तु अब इधर यह सैर-सपाटा कई कारणोंसे कम होता जा रहा है। इस प्रकारके सैर-सपाटोंमें प्रायः ठेठ बनारसी ही अधिक दिलचस्पी लेते हैं, अतः पढ़े-लिखे बाबू कहलानेवाले तथाकथित सभ्य लोग इसको पसन्द नहीं करते या इस प्रकार भांग-बूटी छानने और साफा-पानी देनेको कुछ नीची निगाह से देखते हैं, किन्तु 'पिकनिक'को वे भी पसन्द करते हैं, कुछ दूसरे ढंगसे। वे घरसे पूड़ी पराठे बनवाकर अपनी कारोंसे ले जाते हैं और किसी पहाड़ी स्थानपर, रम्य-प्राकृतिक स्थानका आनन्द उठाते हैं। ●

स्वतन्त्रता संग्राम में काशी का योग-दान

महात्मा गांधी के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार से असहयोग का प्रयोग नया कदम था—वह कदम जिसने शस्त्र की लड़ाई से त्रस्त मानवता को नयी दिशा दी, जिसने निहत्थी भारतीय जनता को नया हथियार दिया। असहयोग के प्रस्ताव का प्रारूप ३० मई, सन् १९२० को काशी में ही तैयार हुआ था तथा सरकार के खिलाफ सत्याग्रह के कार्यक्रम की तैयारी यहीं की गयी थी। सदा नवजीवन संचार में अग्रणी काशी ने इस नये हथियार को अपनाने के साहसिक प्रयोग में अपना पूरा योगदान किया। कांग्रेस के स्थापनाकाल से काशी के नागरिकों ने इस महान् राष्ट्रीय संघटन को मजबूत बनाने में पूरा भाग लिया था। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना के समय काशी के सार्वजनिक जीवन के प्राण स्वर्गीय श्री रामकाली चौधरी ने कुल उपस्थित ७२ प्रतिनिधियों में स्थान ग्रहण किया था। आप के सहयोगी सर्व श्री बसीउद्दीन मुख्तार, डाक्टर छन्नूलाल, मुंशी माधोलाल, उपेन्द्रनाथ बसु, वृन्दावन वकील थे। सन् १८८८ में राधास्वामी बाग में कांग्रेस की हुई सभा में पं० मदनमोहन मालवीय पहली बार आये थे। सन् १८८९ में इलाहाबाद की कांग्रेस में काशी के स्वर्गीय राजा शिवप्रसाद ने सरकार का गुणगान और कांग्रेस को जली-कटी सुनाना शुरू किया ही था कि उनको पंडाल से बाहर निकलवा कर, काशी के उपस्थित प्रतिनिधियों ने कलंक का टीका लगाने से पहले ही टीका लगाने के प्रयत्न करनेवाले को ठीक कर दिया।

सन् १९०४ से काशी के राष्ट्ररत्न स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त तथा स्वर्गीय श्री बैजनाथ सिंह बराबर कांग्रेस में भाग लेने लगे थे। सन् १९०५ में काशी में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। अध्यक्ष श्री गोपालकृष्ण गोखले तथा स्वागताध्यक्ष राजा मुंशी माधोलाल थे। श्री शिवप्रसादजी गुप्त, श्री बैजनाथ सिंह, श्री दुर्गाप्रसाद खत्री आदि विभिन्न विभागों के मुखिया थे। काशी अधिवेशन में प्रिंस आफ़ वेल्स के आगमन पर स्वागत का प्रस्ताव पेश होनेवाला था। वातावरण

क्षुब्ध था। किन्तु अध्यक्ष श्री गोखले अपनी पगड़ी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के पैरोंपर रखकर, उस प्रस्ताव की स्वीकृति का प्रबन्ध करा सके। अन्यथा प्रस्ताव पास होना असम्भव था।

दक्षिण अफ्रिका में प्रयुक्त सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता का सेहरा बाँधे महात्मा गांधी ने प्रायः सन् १९१६ में भारत की राजनीति में प्रवेश किया था।

ऐतिहासिक हड़ताल

सन् १९१८ में दिल्ली अधिवेशन में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार योजना पर असन्तोष प्रकट करने का निश्चय किया गया। सरकार ने दमन करने के लिए रौलट ऐक्ट बनाया। इसका विरोध ३० मार्च, १९१९ को हड़ताल करके करने का निश्चय किया गया। काशी में ३० मार्च की हड़ताल ऐतिहासिक बन गयी। सारा शहर अन्धकारमय था, सवारियाँ तक बन्द थीं। सन् १९२० की १३ अप्रैल को पंजाब में नृशंस हत्याकांड के विरोधस्वरूप जालियाँवाला बाग-दिवस काशी में सशंक वातावरण में, पुलिस के व्यापक प्रबन्ध के रहते हुए, बड़ी शान से मनाया गया। सभास्थल टाउनहाल में तिल रखने की जगह नहीं थी। इस विशाल सभा का संचालन भारतरत्न डाक्टर भगवान्दास तथा स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त ने किया था। काशी नगरी में स्वीकृत असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव का कार्यान्वय जिस गौरवपूर्ण रूप में इस नगरी ने किया, भारत के कम नगरों में हो सका। असहयोग आंदोलन काशी में राजकीय संस्कृत कालेज की परीक्षासे आरम्भ हुआ। सत्याग्रही कालेज के सामने लेट गये। यहाँ पिकेटिंग का प्रथम प्रयोग हुआ। कई विद्यार्थी गिरफ्तार हुए तथा डाक्टर अब्दुल करीम को ६ मास का कारावास दण्ड दिया गया। विद्यार्थियों में गिरफ्तार थे प्रातःस्मरणीय वीर चन्द्रशेखर आजाद, जिन्हें बारह बेंत मारने की सजा हुई थी। बारह वर्षीय बालक आजाद ने जिस संयम और साहस के साथ उन बेंतों की मार सही थी, उससे ही उनके निर्भीक तथा अदम्य साहसी होने का परिचय मिलता था। आगे चलकर यही बालक क्रांतिकारी आंन्दोलन का प्रधान हुआ।

सन् १९२१ में सत्याग्रह-आंदोलन में साम्प्रदायिक एकता का अपूर्व दृश्य देखने को मिलता था। कांग्रेस कमेटी में हकीम मुहम्मद हुसेन खाँ, डाक्टर अब्दुल करीम, मौलवी अब्दुल मजीद, डाक्टर शकूर, सैयद नजीर अली आदि तथा खिलाफत कमेटी में पण्डित शिवविनायक मिश्र, पण्डित राम शास्त्री, श्री विश्वनाथ सिंह आदि थे। २४ सितम्बर, १९२१ से विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आरम्भ किया गया। इस आंदोलन में भाग लेने के कारण डाक्टर अब्दुल करीम को एक साल की सजा दी गयी। ३० सितम्बर की टाउनहाल की सभा में डाक्टर भगवानदासजी ने विदेशी कपड़ों के विशाल ढेर में आग लगायी थी। उस समय श्री सम्पूर्णानन्द की गिरफ्तारी के बाद गिरफ्तारियों का तांता लग गया तथा काशी से प्रायः ५०० आदमी जेल गये। आंदोलन में जेल जानेवालों की भीड़ से घबड़ाकर पुलिस ने सत्याग्रहियों के साथ अमानुषिक व्यवहार शुरू किया। जाड़े की रात में कपड़ा उतरवाकर शहर के बाहर दूर ले जाकर छोड़ना, मैदान में खड़ा कर पाईप से पानी की बौछार छोड़ना, हवालाती कोठरी में पानी का छिड़काव सत्याग्रहियों को डिगा नहीं सका। जेल में स्थान का अभाव हो गया, किन्तु सत्याग्रहियों की बहुत बड़ी संख्या अपने को हमेशा की तरह हर अत्याचार का सामना करने को प्रस्तुत करती रही।

सन् १९२३ में डाक्टर अंसारी के सभापतित्व में प्रथम बनारस राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सन् १९२४ में श्री जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन काशी में आयोजित किया गया, किन्तु सम्मेलन में आने के पहले ही वे गिरफ्तार हो गये। कौंसिल प्रवेश के निश्चय के साथ ही असेम्बली के चुनाव में भाग लिया। प्रबल विरोध के बावजूद काशी से डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी चुने गये। हारनेवाले सरकार-भक्त थे राय टोडरमल तथा श्री विश्वेश्वर-कविराज। सात नगरों के निर्वाचनक्षेत्र से पंडित मोतीलाल नेहरू तथा डाक्टर अंसारी निर्वाचित हुए। साइमन कमीशन के बहिष्कार का निर्णय किया गया। उसके विरोध में उग्र प्रदर्शन का आयोजन बनारस छावनी स्टेशन पर किया गया था। डर के मारे साइमन कमीशन के सदस्य मुख्य स्टेशन पर न उतर कर दूर की क्रासिंगपर उतरे, किन्तु वहाँ भी उनको काला झंडा दिखाया गया।

असली मुठभेड़ तो ज्ञानवापी पर हुई। एक तरफ पुलिस की चौकसी थी, दूसरी तरफ काले झंडे ही झंडे थे। 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के गगनभेदी नारों से सदस्यों को ललकारा गया था। काशी में मूर्तमान भारतीय लोकमत का स्पष्ट दर्शन करने के बाद कमीशन के सदस्यों को कहना पड़ा 'डोण्ट वरी, वी आर गोइंग बैक' (परेशान मत होइये, हम वापस जा रहे हैं)। लाहौर कांग्रेस में काशी के दो नेता श्री श्रीप्रकाश तथा श्री शिवप्रसादजी गुप्त क्रमशः प्रधान मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त किये गये। कांग्रेस के निश्चयानुसार पंडित मोतीलाल नेहरू तथा शेरवानी ने असेम्बली से तथा श्री सम्पूर्णानन्द ने कौंसिल से त्यागपत्र दिया था। सन् १९३० की २६ जनवरी को प्रथम बार सारे देश के साथ काशी नगरी ने भी स्वाधीनता की शपथ ली थी। महात्मा गाँधी की दांडी यात्रा से आरम्भ नमक सत्याग्रह आंदोलन में काशी ने पूरा भाग लिया था। शहर के प्रथम अधिनायक श्री सम्पूर्णानन्द थे, जिले के श्री रामसूरत मिश्र। नमक सत्याग्रह के दृश्य का चित्रण करना सिवाय किसी कुशल शब्द-चित्रकार के संभव नहीं है किन्तु नमक बनाने की जलती कड़ाही की छीना-झपटी में सत्याग्रहियों का मनोबल देखने की चीज थी। पुलिस के अत्याचारों के सामने निरन्तर डटे रहने में काशीवासी किसी से पीछे नहीं थे। यह दृश्य काशी की गली-गली में देखने को मिलता था। प्रथम अधिनायक के बाद, श्री श्रीप्रकाश, श्री कृष्णचन्द्र शर्मा, श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री खेदनलाल आदि एक-एक कर गिरफ्तार होते गये। विलायती वस्त्र का बहिष्कार, मादक द्रव्य का निषेध के कार्यक्रम सफलतापूर्वक निभाये गये। विलायती कपड़ों की दूकानों पर कांग्रेस की मुहर लगा दी गयी तथा मादक द्रव्य की दूकानों पर लगातार धरना दिया गया।

कांग्रेस गैरकानूनी घोषित कर दी गयी। साथ ही 'आज' 'हंस' आदि अखबारों से जमानत माँगी गयी। अखबारों की बन्दी हो गयी। 'आज' साइक्लोस्टाईलपर निकाला गया। उसे भी सरकार ने बन्द कर दिया। फिर 'रणभेरी' बजने लगी, जिसका पता लगाने में सरकारी पुलिस की असफलता का विवरण दिया जा चुका है।

४ मार्च १९३१ को गांधी इर्विन समझौता हुआ। फलतः गोलमेज सम्मेलन का नाटक हुआ, किन्तु गांधीजी विलायत से लौटते ही बम्बई में नजरबन्द कर लिये गये। परिणामस्वरूप पुनः आंन्दोलन ने जोर पकड़ा। काशी के सब प्रमुख नेता—श्री शिवप्रसाद गुप्त, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री बैजनाथ सिंह, श्री तारापद भट्टाचार्य आदि—पकड़ लिये गये। शहर में पूरी हड़ताल करने के सफल आयोजन के साथ-साथ टाउनहाल में, जिस पर फौज और पुलिस का कब्जा था, भारी भीड़ ने घुसने का प्रयत्न किया। पुलिस ने गोली चलायी—जिसका सामना करते समय श्याममनोहर शहीद हुए। सैकड़ों आदमी घायल हुए, श्री रामनन्दन और टेंगर बाद में शहीद हो गये। उन दिनों पुलिस और कांग्रेस सत्याग्रहियोंकी बुद्धि और कौशल की अच्छी लाग-डाँट लगती थी जिसमें प्रायः कांग्रेसजन सफल होते थे। गंगाजी में झण्डाभिवादन करने में श्री लोढ़ूराम की सफलता उसी प्रकार की थी। 'हेली गो बैक' के नारे से काशी की दीवारें, सड़कें रंग दी गयी थीं—जब तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर सर मालकम हेली काशी आये थे। पुलिस जितनी चौकसी बरतती उससे दूनी फुरती से नारे लिखे जाते थे। 'शंखनाद' प्रेस से छपकर निकलता था, जिसके प्रकाशनस्थल को पुलिस नहीं ही खोज पायी। काफी अरसे तक काशी में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का कार्यालय तथा प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का कार्यालय था। सन् १९३४ में स्थापित कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का प्रथम केन्द्रीय कार्यालय काशी में कबीरचौरास्थित श्री रामेश्वर सहाय सिंह के मकान में ही रखा गया था जो बाद को बम्बई चला गया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह-आंदोलन में काशी ने प्रमुख भाग लिया था। काशी के सभी कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह किया, जो पीछे रह कर संचालन करते थे वे नजरबन्द कर लिये गये। हर आंदोलन के संचालन की व्यवस्था सारे प्रांत में करने में काशी का प्रमुख हाथ रहा।

सन् '४२

सन् १९४२ में काशी ने जो किया, उसका विशद वर्णन इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं। घटनाएँ विशेष पुरानी नहीं हैं किन्तु अंग्रेजी सरकार के हर दमन

के बावजूद शहर तथा जिले में विराट प्रदर्शन किये गये, रेल लाइनें तोड़ी गयीं, गोली की बौछार सही गयी, जेलों को भर दिया गया, लेकिन हिम्मत नहीं हारी इस नगरी के वासियों ने। नगर के सभी प्रमुख नेता पहले ही दिन जेल में नजरबन्द कर दिये गये, किन्तु जनता ने अपना नेतृत्व स्वयं संभालकर सरकार की जड़ें हिला दीं। सन् '४२ के आंदोलन में सर्वश्री विश्वनाथप्रसाद मल्लाह, काशीप्रसाद, बैजनाथप्रसाद मेहरोत्रा, हीरालल पांडेय शहीद हुए। थाना फूंकने के आयोजन में धानापुर का कांड हुआ जिसकी याद उस क्षेत्र की जनता को आज भी बनी है। कितने ही वीरों को फाँसी और कालेपानी की सजा हुई, किन्तु कांग्रेस गवर्नमेंट होने पर सब छूट गये। उस आंदोलन में बहादुरी और साहस के कितने ही कारनामें हुए जिनसे काशी का मस्तक ऊँचा हुआ। इनमें दीवानी कचहरी पर श्री ईश्वरचन्द्र मिश्र द्वारा झण्डा फहराना, एक विद्यार्थी द्वारा पुलिस अफसर की तनी पिस्तौल झपटकर छीनना उल्लेखनीय है।

सन् ४२ में गुप्त आंदोलन के संचालन का काशी प्रमुख केन्द्र था। उस समय हर प्रांत के संचालक काशी आते, मिलते तथा यहाँ से ही कार्यसंचालन करते थे। अगस्त विद्रोह के अन्ततम नेता श्री जयप्रकाश नारायण की यह प्रथम शरणस्थली थी।

मकान कर का विरोध

भारत के इतिहास में फूट के कारण जितने दुर्दिन आये, उसके कथानक को सभी जानते हैं। आपसी फूट के कारण अंग्रेजों से टक्कर लेनेवाले नेतागण— राजा महाराज, नवाब एक के बाद एक धराशाय़ी होते गये। अंग्रेजों का प्रभुत्व भारत पर दिन पर दिन बढ़ता ही गया। काशी भी अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गयी। किन्तु स्वाधीनता-प्रेमी काशी में आग बुझी नहीं। जहाँ मौका मिला, आग धधक उठती थी। सन् १८१० में काशी में मकानों पर टैक्स लगा। यह टैक्स बंगाल और बिहार के नगरों में लग चुका था। किन्तु सक्रिय विरोध काशीवासियों ने ही किया। इस टैक्स का प्रभाव धनी गरीब सब पर पड़ता था। इस कारण सभी व्यापारियों, व्यवसायियों और नागरिकों ने विचार कर स्थिर

किया कि इस टैक्स का विरोध शान्तिपूर्ण तरीकों से किया जाय। नगरनिवासी शहर के बाहर एकत्र हुए। शासन की ओर से शक्ति का प्रदर्शन हुआ। इसके विरुद्ध उत्पन्न क्षोभ का प्रदर्शन हड़ताल द्वारा किया गया। मिल के इतिहास में सातवें भाग के अनुसार २६ दिसम्बर, १८१० से ११ जनवरी, १८११ तक प्रायः एक पक्षतक सारे शहर में :कार-बार बन्द रहा। आस-पास के जिले के लोग एकत्र होकर 'कलकत्ता चलो' का नारा लगाते थे। आंदोलन को न दबते हुए देखकर, अन्तमें टैक्स लगाने की घोषणा वापस ले ली गयी। काशीवासी विजयी हुए। यह घटना भविष्य की ओर संकेतमात्र थी। काशीवासी अन्याय के सदैव विरोधी रहे हैं।

गौरय्याशाही

बमभोलेशंकर के चिरसंगी 'नंदी' के भाई बिरादरी की सम्मान रक्षा के हेतु इसी प्रकार का विरोधात्मक कार्यक्रम काशीनिवासियों ने सन् १८५२ में अपनाया था। बनारस के तत्कालीन, अंग्रेज कलेक्टर ने 'वृषोत्सर्ग' द्वारा स्वच्छन्द विचरण करनेवाले साड़ों को पकड़कर कमसरियट में बन्द करना शुरू किया। यह घटना ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करने में सहायक हुई कि अंग्रेज अधिकारियों को तलवार का मुकाबला करने की कौन कहे मिट्टी की बनी 'गौरैय्या' की मार से अपने को बचाना मुश्किल हो गया। साड़ों की गिरफ्तारी की ठेस के कारण नागरिकों को अत्यन्त क्षोभ था, जो दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। उस क्षोभ के निराकरण के लिए तत्कालीन कलेक्टर ने काशीवासियों से बातचीत के लिए वर्तमान भरतमिलाप के स्थल पर सभा बुलायी। शासन की हेकड़ी और काशीवासियों की स्वातन्त्र्य परम्परा तथा धार्मिक कट्टरता में समझौता नहीं हो सका। फलस्वरूप नागरिकों का असन्तोष भड़क उठा। जनता पास ही स्थित कुम्हारों की दूकानों से 'गौरैया' उठा-उठाकर कमिश्नर, कलेक्टर और कोतवाल के ऊपर फेंकने लगी। इस जनक्रोध प्रदर्शन को 'गौरैय्याशाही' के नाम से स्मरण किया जाता है।

सन् '५७ की याद

सन् १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम में 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झांसीवाली रानी' लक्ष्मीबाई का जन्म काशी में हुआ था। यहाँ उनकी शिक्षा-दीक्षा का अधिकांश प्रबन्ध हुआ। सन् १८५७ में जनता तैयार थी—नेता नहीं थे। सन् ५७ के संग्राम की खबर मिलते ही बनारस में रहनेवाले अंग्रेज चौकन्ने हो गये थे और अपनी रक्षा की तैयारी कर रहे थे। बनारस की छावनी में यद्यपि अधिकांश भारतीय सैनिक थे, किन्तु बारूद और तोपखाना अंग्रेजों के अधिकार में था। पूर्वी उत्तरप्रदेशमें अंग्रेजों के संहार के समाचार के साथ अंग्रेजी सत्ता के उखड़ने की सम्भावना प्रतीत होने पर बनारस के अंग्रेज अधिकारी दहल उठे थे। क्रूरता और नृशंसता के प्रतिमूर्तिरूप अंग्रेज फौजी अधिकारियों ने भारतीय सैनिकों से बहाने द्वारा शस्त्र रखवा लेने की योजना बनायी थी, किन्तु भारतीय फौजने शस्त्र रखने की जगह उलटे अधिकारियों पर हमला कर दिया। सिख फौजने अधिकारियों की रक्षा का प्रयत्न किया। गलतफहमी के कारण सिखों पर भी अंग्रेजों ने गोलाबारी की। फलतः काशी को सन् ५७ के संग्राम में एक अनोखा सौभाग्य मिला—केवल इसी नगरी में हिन्दू मुसल्मान के साथ सिखों ने भी अंग्रेजों का मुकाबला किया। सारे देश में यह अन्य किसी स्थानपर नहीं हो सका था।

रामहल्ला

प्रायः १८९० में काशी में जलप्रबन्ध के सिलसिले में भदैनी पम्पिंग स्टेशन के लिए जमीन सरकारी अधिकारी कानूनन लेने की योजना बना रहे थे। अस्सी नाले के पास घनी बस्ती के पार्श्व में एक मन्दिर इस योजना के अन्तर्गत आता था। इसी को तोड़कर जलकल के लिए स्थान-विस्तार की काररवाई की जाने का समाचार जनता में फैला। सतत विद्रोही काशी, धर्मप्राण काशीनिवासी कितने ही दबे हों, इस अनाचार को कैसे बर्दाश्त करते। चैत्र मास, नवरात्र का सातवां दिन, टाउनहाल में म्युनिसिपल बोर्ड की मीटिंग में मन्दिर तोड़ना निश्चित किया गया। जनता उमड़ पड़ी टाउनहाल में और भदैनी पंपिग स्टेशन पर। प्राणहीन, भावनाविहीन, हृदय की जगह पत्थर रखनेवाले अंग्रेजी सरकार के अधिकारी

क्या जानें जन-भावना का सम्मान करना ? लाठीचार्ज, गोलीवर्षा और भारतीय जनजीवन का हनन यह तो मामूली बात थी, लेकिन इस 'रामहल्ले' की आवाज के सामने झुकना पड़ा पाषाण हृदय अधिकारियों को। मन्दिर नहीं गिरा। काशी की परम्परा का निर्वाह हुआ।

इस प्रकारके अपने आप उत्पन्न जनसंघटन का स्थायीकरण तो नहीं हो सका, किन्तु काशी को इस बात का सौभाग्य अंग्रेज सल्तनत के खातमे के पहले एलान का भी मिला जब दादा भाई नौरोजी ने पहली बार 'भारत को स्वराज्य चाहिये' की घोषणा इसी नगरी में की। सन् १९१५ में हिंदू विश्वविद्यालय के आरम्भोत्सव के अवसर पर स्वनिश्चित एक साल के मौनव्रत को समाप्त करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी ने इसी काशी नगरी में अंग्रेजी राज्य को ललकारा था और देशी राजे-रजवाड़ों की भर्त्सना की थी। यह महात्मा गांधी की भारत-भूमिपर अफ्रीका-प्रवास के बाद लौटने पर पहली राजनीतिक ललकार थी, जिसके बाद देश की अवस्था में तेजीसे बदलाव शुरू हुआ। काशी में ही जालियानवाला बाग हत्याकांड पर कांग्रेस जांच कमेटी ने अपनी रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किया था। यहीं की आलइण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक में असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था।

रणभेरी

सविनय अवज्ञा आंदोलन के अवसर पर गुप्त प्रकाशन का जितना सफल आयोजन काशी से हुआ, उतना किसी अन्य नगर से नहीं। रणभेरी, शंखनाद, रणचण्डी, सत्याग्रह समाचार आदि अनेक पत्र निकाले गये। इनके प्रकाशन का कार्य काशी से होता था। साइक्लोस्टाइल ही नहीं बाकायदा प्रेस चलते थे। पुलिस माथा पटककर जान दे देने पर भी इनके गुप्त प्रकाशन स्थलों को नहीं ही पकड़ पायी थी। सन् १९४२ में हजारीबाग जेल से ब्रिटिश सरकार की जेल व्यवस्था को चुनौती देकर भाग निकलने पर श्री जयप्रकाशनारायण ने काशी को अपना केन्द्र बनाया था और यहीं से उन्होंने देश की जनता के नाम, अमेरिकन सैनिकों के

नाम पत्र तथा स्वातन्त्र्य संग्राम के सैनिकों को अपनी आहुति देने का आवाहन किया था।

क्रांतिकारियों की विशेष नगरी

काशी नगरी की साजसज्जा इस प्रकार की है कि यहाँ पर हर प्रदेश के निवासी खप सकते हैं—हर प्रदेश की भाषा इस नगरी के किसी न किसी कोने में सुनी जा सकती है। काशी की गलियों के बिछे जाल में कोई व्यक्ति कहीं छिपा रह सकता है—किसी की रहनसहन में किसी का हस्तक्षेप सम्भव नहीं हैं। इसी कारण सन् १९१९ ई० में रौलट कमेटी की रिपोर्ट में काशी को षड्यन्त्रकारियों के लिए विशेष नगरी घोषित किया गया था। नगरी की इस विशेषता का लाभ क्रान्तिकारी वीरों ने पर्याप्त मात्रा में उठाया। काशी की देन सर्वश्री रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, चन्द्रशेखर आजाद, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, राजगुरु थे, क्रांतिकारी आंदोलन को। इनका कार्यक्षेत्र था तो वास्तव में पूरा देश, विशेषतः उत्तर भारत, किन्तु केन्द्रस्थल था काशी। यहाँ इन वीरों का अंग्रेजी पुलिस की वक्र दृष्टि से बचे रहना संभव हो पाता था। हर प्रदेश के निवासियों के तीर्थयात्रा पर आते जाते रहने के कारण अन्य प्रदेश के क्रांतिकारियों का सरलतापूर्वक आना-जाना, मिलना-जुलना प्रायः निर्बाध रूप से हो जाता था। पुलिस के हर प्रयत्न के बावजूद काशी में क्रांतिकारी कार्यविधि में बाधा नहीं पड़ पाती थी। छिपकर काम करना, जब कि चारों ओर कड़े से कड़ा पुलिस का प्रबन्ध हो, काशी से अधिक किसी अन्य नगर में, कम से कम भारत में तो सम्भव नहीं था।

पीपा विस्फोट

सन् १८२३ में पुनः मकान टैक्स की उगाही आरम्भ हुई। उस समय इसका पुनः विरोध हुआ। सन् १८५० में एकाएक पीपों में रखी बारूद में आग लगी और भयंकर विस्फोट हुआ। उन दिनों अंग्रेजी फौज की छावनी राजघाट के समीप थी। इस विस्फोट की आवाज चकियातक सुनी गयी थी। कितने ही

सैनिक आहत हुए, कितने मकान ढह गये। इनके ध्वंसावशेष आज भी देखे जा सकते हैं। घटना कैसे हुई—यह रहस्यमय है। किन्तु इस प्रकार के आन्दोलन के अनुभवी बता सकते हैं कि यह किसी न किसी नियोजित कार्यक्रम का अंग अवश्य रहा होगा। भारत में इस प्रकार के गुप्त क्रांतिकारी कार्यक्रम अपनाये जा चुके हैं। उनके कार्यक्रम में ऐसे विस्फोटों का स्थान रहा है—इस कारण अवश्य ही इस भयंकर विस्फोट के पीछे दीवाने स्वातन्त्र्य सैनिकों का हाथ रहा होगा।

नदेसरी कोठी में जब नंगी तलवार चली

वजीर अली खाँ जब बनारस आये

अवध के प्रसिद्ध नवाब आसफुद्दौला की सन् १७९७ ई० में मृत्यु हो जाने पर उनका कथित पुत्र वजीर अली अवध का नवाब हुआ। परन्तु आसफुद्दौला के भाई नवाब सआदत अली खाँ ने यह प्रमाणित कर दिया कि वह नवाब का पुत्र नहीं है प्रत्युत् किसी गर्भवती स्त्री के नवाब के हरम में पहुँच जाने के अनन्तर उत्पन्न हुआ। इस कारण अवध राज्य के संरक्षक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने वजीर अलीखाँ को गद्दी से हटाने और उस पर नवाब सआदत अली को बैठाने का निश्चय किया। इस फेर-फार में कम्पनी को तथा अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ और सआदत अली से मनचाही नयी सन्धि कर ली। सन् १७९८ ई० के जनवरी महीने के अन्त में वजीर अलीखाँ गद्दी से हटाये गये और अपने परिवार, धन-समाज आदि के साथ वह लखनऊ से कूचकर बनारस चले आये जहाँ इनके रहने का प्रबन्ध किया गया था। माधोदास सामिया के बाग में यह राजसी ठाट के साथ रहने लगे।

नवाब जब डंका पीटता काशी में निकलता था

वजीर अली के मस्तिष्क से अवध राज्य को पुनः प्राप्त करने तथा कम्पनी के प्रभाव से अपने को मुक्त करने का विचार दूर नहीं हुआ था। इसने कम्पनी के विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ किया तथा बांदा के राजा अली बहादुर, गोसाईं हिम्मत बहादुर, मराठों तथा अन्य राजाओं से सहायता प्राप्त करने के लिए लिखा-पढ़ी प्रारम्भ कर दी और अफगानिस्तान के जमांशाह को भी भारत पर चढ़ाई करने के लिए लिखा। इसके इस षड्यन्त्र में ढाका के नवाब शम्सुद्दौला आदि

कई लोग सम्मिलित थे और इसके दो मुख्य सम्मतिदाता इज्जत अली तथा वारिश अली इसके अन्तरङ्ग मित्र थे।

वजीर अली ने कई सौ नयी सेना भी भर्ती कर ली और काशी नगर में अपनी धाक जमाने के लिए बड़े धूमधाम से डंका पीटता हुआ बाहर निकलता था। यद्यपि यह अंग्रेजों से बहुत चिढ़ा हुआ था और उन्हें ही अपने पतन का कारण समझता था, परन्तु कारणवश उसे कम्पनी के पोलिटिकल एजेण्ट श्री चेरी से कभी-कभी मिलना ही पड़ता था, जो बनारस में ही रहते थे। ये दोनों ही एक दूसरे के यहाँ आते जाते थे।

षड्यन्त्र का भण्डाफोड़

उस समय बनारस में श्री डेविस जज तथा मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने वजीर अली के सारे षड्यन्त्र का कच्चा चिट्ठा प्राप्त कर कुल वृत्तान्त कलकत्ते लिख भेजा और साथ ही यह भी लिखा कि उसे बनारस से हटा दिया जाय। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मौरनिंगटन ने पोलिटिकल एजेण्ट चेरी को आज्ञा भेजी कि वह वजीर अली को तुरत कलकत्ते रवाना कर दें। श्री चेरी ने भी यह आज्ञा वजीर अलीखाँ को सुना दी, जिसपर वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनाप-शनाप बकने लगा। इसके अनन्तर वह अपने निवासस्थान को लौट आया। उस समय बनारस के पास ही जनरल अर्सकीन के अधीन गोरी पल्टनें तथा कुछ पश्चिम हटकर मुख्य सेना जनरल सर जेम्स क्रेग के अधीन उपस्थित थीं और इस कारण यह अवसर किसी प्रकार का उपद्रव करने के उपयुक्त नहीं था, परन्तु वजीर अलीखाँ ने अपने उद्धत स्वभाव तथा मूर्ख मित्रों की सम्मति से ऐसा दुस्साहस का कार्य कर डाला, जिससे उसे जीवनपर्यन्त कारागार में रहना पड़ा।

पाँच अंग्रेज तलवार के घाट

१४ जनवरी सन् १७९९ ई० को कलकत्ते जाने के सम्बन्ध में बातचीत करने के बहाने यह दो सौ सशस्त्र सवारों तथा पैदल सेना के साथ नदेसर में श्री चेरी के बंगले पर पहुँचा। श्री चेरी को इसके ... की सूचना मिल चुकी थी

तब भी इन्होंने उसे अपने कमरे में बुला लिया। श्री चेरी के सिवा उनका सेक्रेटरी ईवान्स भी उस कमरे में उपस्थित था।

वजीर अली ने पहुँचते ही अपने प्रति किये गये कुव्यवहारों का विवरण सुना कर स्पष्ट कह दिया कि वह कलकत्ते न जायगा, पर वाराणसी भी छोड़कर जहाँ उसका मन होगा चला जायगा। इतना इसके कहते ही वारिस अली शीघ्रता से एजेण्ट के पीछे जा खड़ा हुआ और वजीर अली ने तलवार खींच कर श्री चेरी पर चोट कर दी। चेरी उठकर भागे, पर काट डाले गये। ईवान्स भी भागा, पर बाहर के सैनिकों ने उसे मार डाला। इनके सिवा कप्तान कौनवे हिल तथा ग्रेहम तीन अंग्रेज और मारे गये।

जज श्री डेविस ने भाले से रक्षा की

इसके अनन्तर ये सब नदेसर की कोठी की ओर चले, जहाँ श्री डेविस रहते थे। यह सामने ही रहते थे। श्री डेविस उपद्रव का हाल सुन चुके थे अतः इन्होंने अपनी पत्नी, दो पुत्रों तथा एक आयाको छत पर भेज दिया और उनकी रक्षा के लिये लम्बा भाला लेकर सीढ़ी रोकने के लिए खड़े हो गये। इन्होंने छावनी में उपद्रव की सूचना भेज दी थी। एक घण्टे तक यह अपनी रक्षा करते रहे और एक बार इनका भाला छिनते-छिनते बच गया था। अन्त में इन्हें न पा सकने पर उपद्रवीगण अन्य बंगलों को लूटते-जलाते हुए नगर की ओर लौट गये।

अंग्रेजी सेना ने माधोदास बाग घेरा

११ बजते-बजते बेटावर की छावनी से कुछ सवार सेना आ पहुँची और इसके अनन्तर जनरल अर्सकीन भी ससैन्य आ पहुँचे। वजीर अली के जो सैनिक इधर-उधर उपद्रव कर रहे थे वे भागे और अंग्रेजी सेना माधोदास के बाग पहुँच गयी। इसे वजीर अली ने बहुत दृढ़ कर लिया था, पर संध्या होते-होते इसका फाटक तोड़कर गिरा दिया गया और उसपर अधिकार हो गया। परन्तु वजीर अली पीछे के मार्ग से भागकर आजमगढ़ की ओर चला गया। इसके अनन्तर नगर में शान्ति स्थापित हुई और कई मनुष्यों को, जिन्होंने इनका साथ दिया था, प्राणदण्ड मिला।

वजीर अली साधु के वेश में भागा

वजीर अली आजमगढ़ होता हुआ नेपाल की तराई में पहुँचा और कुछ सेना एकत्र कर लूट-मार मचाता रहा। वहाँ से युद्ध में परास्त होने पर यह भागा और साधु का वेष बनाकर अवध में होता हुआ यह राजपूताने की ओर चला जहाँ से अफ़गानिस्तान जाने का इसका विचार था। यह भरतपुर होता हुआ जयपुर पहुँचा, जहाँ के राजा के समझाने पर कि भागने से कोई लाभ नहीं है इसने स्वीकार कर लिया और प्राण रक्षा का वचन लेकर यह कर्नल कालिन्स को सौंप दिया गया।

ठीक दो वर्ष बाद पुनः वाराणसी में

वजीर अली यहाँ से वाराणसी लाया गया, जहाँ यह ठीक १४ जनवरी सन् १८०० ई० को उपद्रव की प्रथम वार्षिकी को पहुँचा था। यहाँ से यह कलकत्ते भेजा गया, जहाँ यह फोर्ट विलियम के एक ऐसे बड़े कमरे में रखा गया जो लोहे की छड़ों से तीन भाँगों में बाँटा गया था। बीच के बड़े भाग में वजीर अली रखा गया था और दोनों ओर के दो भागों में दो संतरी—एक अंग्रेज तथा एक देशी रक्षा के लिए रखे जाते थे। कई वर्षों के अनन्तर यह दक्षिण के वेलार दुर्ग में भेज दिया गया जहाँ मैसूर के टीपू सुल्तान के परिवार वाले रहते थे।

विवाह में ३० लाख दफ़न में ३० रुपये

यही वजीर अली ३६ वर्ष की अवस्था में सन् १८१७ ई० के जून महीने में मर गया और वहीं काशी बाग में गाड़ा गया। कहते हैं कि इसकी मृत्यु के समय भी अंग्रेज-रक्षक साथ में थे और इसके परिवार के २—३ मनुष्य से अधिक उपस्थित न थे। इस संस्कार में कुल ३० रुपये लगे थे जब कि इसके विवाह के समय नवाब आसफुद्दौला ने ३० लाख रुपये व्यय किये थे।

शिवजी का प्रिय रुद्राक्ष

रुद्राक्षको संस्कृत में रुद्राक्षा, हराक्ष, शिवाक्ष, शर्वाक्ष, नीलकण्ठाक्ष आदि नामों से जानते हैं। इन नामों का अर्थ है—शिवजी की आँख। पुराणों में रुद्राक्ष की उत्पत्ति शिवजी की आँख से मानी गई थी।

जावा की भाषा जावानी में इसे जनत्री कहते हैं।

आधुनिक ओद्भिदी के विद्वान् इस पौदे को इलियोकार्पस श्रेणी में रखते हैं। इस श्रेणी में अनेक जातियों के वृक्ष हैं जो रुद्राक्ष की गुठली जैसे फल धारण करते हैं। कुछ वृक्ष ये हैं—इलियोकार्पस-रॉबस्टस। यह विशाल वृक्ष है। एक वृक्ष इलियोकार्पस ट्युबर्कुलेट्स है। गुठलीपर उभार स्पष्ट होने से इस जाति को ट्युबर्कुलेटस कहते हैं। रुद्राक्ष पैदा करनेवाला एक अन्य वृक्ष है—इलियोकार्पस गेण्टिट्स।

प्राप्ति स्थान

हमारे देश में व्यापारिक रुद्राक्ष जावा तथा नेपाल से आता है। बांडुंग शहर की सड़कों पर, जालान नकुला (नकु पथ) और जालान सहदेवा (सहदेव पथ) तथा जालान राथा (जन-पथ) पर रुद्राक्ष के वृक्ष रोपे हुए हैं। एक छोटे पर्वतीय शहर वोनोसोवो (वनशोभा) में भी रुद्राक्ष के पेड़ हैं। पूर्व जावा के पहाड़ी इलाकों में चेलाचेप में और गुनुंगसारी में यह जंगली वृक्ष है। समुद्र तट से तीन हजार फुट की ऊँचाई तक इसके पेड़ मिल जाते हैं। ऊपर बर्मा में लाशियों के आसपास भी रुद्राक्ष मिलता है।

नेपाल में रुद्राक्ष की उत्पत्ति भोजपुर, चैनपुर, दिगला तथा वाना में होती है। मझवा तथा तुगलिंग और कुलुंग में इसकी पैदावार अधिक है। पूर्वीय नेपाल में मोरंग और राने छाप में इसके जंगल हैं।

देहरादून और हरिद्वार में कुल मिलाकर १५–२० वृक्ष होंगे। व्यापारियों का यह अनुभव है कि यहाँ की भूमि में गुठली लम्बी हो जाती है। लम्बी गुठली की व्यापार में माँग नहीं है। गोल रुद्राक्ष को पसन्द किया जाता है। इसलिए इन प्रदेशों में उगे हुए ये वृक्ष फलों की दृष्टि से विशेष महत्व के नहीं हैं।

संस्कृत साहित्य में

महाकवि कालिदास (पहली शती ईस्वी पूर्व) की कृतियों में रुद्राक्ष का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। परशुराम अपने दाहिने कान के ऊपर रुद्राक्ष के इक्कीस दानों वाली माला धारण करते थे, क्योंकि उन्होंने क्षत्रियों का इक्कीस वार संहार किया था। शिवजी के कानपर रुद्राक्ष की दुहरी माला पड़ी हुई थी। पार्वती ने तपस्या करते हुए अपने हाथ में रुद्राक्ष की माला को धारण किया था। शिवजी ब्रह्मचारी का रूप धरकर उनके पास आते हैं और उनसे तप करने का कारण पूछते हैं। तब भी पार्वती ने रुद्राक्ष की माला को हाथ के अग्रभाग में लेती हुई तपका कारण बतलाया। चन्द्रापीड़ राजा ने दिग्विजय यात्रा में एक दिन शिकारपर जाते हुए अच्छोद सरोवर के पास शिव-मन्दिर में महाश्वेता को पूजा करते देखा था। महाश्वेता के गले में रुद्राक्ष की माला अधिष्ठित थी। भवभूति कवि (७वीं ८वीं शती) ने लव का जो सुन्दर चित्र खींचा है उसमें ब्रह्मचारी बालक लव के एक हाथ में धनुष है, कलाईपर रुद्राक्ष की माला लपेट रखी है; दूसरे हाथ में पीपल का दण्ड पकड़ रखा है।

भवभूति (७वीं ८वीं शती) ने महावीर चरित्र में भृगुनन्दन परशुराम के उग्र एवं शान्त वेष का वर्णन करते हुए बताया है कि उनके हाथ में यद्यपि बाण है जो उनकी उग्रता को प्रकट करता है परन्तु हाथपर लिपटी रुद्राक्ष की माला शान्ति की द्योतक है। त्रिविक्रम भट्ट (दसवीं शती पूर्वार्द्ध) ने अपने काव्य नलचम्पू के आरम्भ में ब्राह्मण-प्रशंसा करते हुए रुद्राक्षमाला का वर्णन किया है। उस समय ब्राह्मण लोग रुद्राक्ष की माला के द्वारा प्रभु का नाम जपते थे। सूर्यमण्डल से उतरे हुए दमनक मुनि के साथ जो मुनि थे उन्होंने रुद्राक्ष की मालाएँ धारण कर रखी थीं। दमनक मुनि ने भी बाएँ हाथ में रुद्राक्ष माला

पहनी हुई थी। त्रिविक्रम भट्ट ने मुनि के हाथ को खिला हुआ कमल तथा रुद्राक्ष के मनकों को भ्रमर की उपमा दी है। मम्भर (१२वीं शती) ने काव्यलिंग अलंकार के उदाहरण में रुद्राक्ष माला का वर्णन इस प्रकार किया है— 'अरे भस्म के लेप ! अरी रुद्राक्ष की माला ! अरी शिव मन्दिर की सुन्दर सोपान पंक्तियाँ ! अब मैं कहाँ और तुम कहाँ ! जाओ तुम्हारा कल्याण हो।

ओद्भिदी वर्णन

रुद्राक्ष का बड़ा वृक्ष होता है। शाखाएँ लटकती हुई होती हैं। ग्रीष्मारम्भ में अप्रैल में जब नए पत्ते निकल रहे होते हैं तो दूर से अनजान आदमी को यह पीपल वृक्ष का भ्रम पैदा कर सकता है।

शाखाओं के सिरों पर फूल की मंजरी प्रकट होती है। फूल मैले-से रंग के होने से विशेष आकर्षक नहीं होते। जावा में यह वृक्ष जून से फूलता है। फूलों के गिरने के बाद रुद्राक्ष के फल लगते हैं। फल गूदेदार होते हैं। इनका रंग हरा होता है। पकने पर नीला पड़ जाता है। शाखाओं के सिरों पर पाँच-छः या अधिक फल एक साथ लगे रहते हैं। कुछ जातियों में फल लम्बोतरे तथा कुछ में गोल होते हैं। हरिद्वार में दो पेड़ हैं। इनके फल गोल हैं। इनके ऊपर का गूदा स्वाद में कड़वा है। देहरादून की वन अनुसन्धान शाला की वनस्पति वाटिका में रुद्राक्ष का जो पेड़ है उसके कच्चे फलों का गूदा खट्टा है। बच्चे उसे स्वाद से खाते हैं और वह चटनी बनाने के काम भी आता है।

पके फल बेर जैसे मृदु गूदेदार हो जाते हैं। अँगुलियों के बीच में मसलने से गुठली से गूदा अलग हो जाता है। पके फल स्वतः गिर पड़ते हैं। इनके अन्दर की गुठली कठोर हो जाती है। गूदे को उतार कर गुठली को इकट्ठा कर लिया जाता है।

बारिश का दानों की मोटाई पर प्रभाव पड़ता है। पूरी बारिश मिलने पर दाने फूलकर मोटे हो जाते हैं। कम बारिश वाले साल में दाने भी छोटे रह जाते हैं।

एक रेखा से लेकर चौबीस रेखाओं तक का रुद्राक्ष मिलता है। रेखाओं के बीच में जो उभार होते हैं उन्हें मुख कहते हैं। इसी से इन्हें एकमुखी, पंचमुखी आदि नाम दे देते हैं। ओद्भिदी की दृष्टि से ये मुख गुठली की फाकें हैं। पंच-मुखी रुद्राक्ष अधिक मिलता है। फेरने की माला प्रायः इसी से बनती है। एक माला में एक सौ आठ मनके रहते हैं।

दाना जितना छोटा होगा उतना ही अधिक मूल्यवान् होगा। एक वृक्ष पर यदि पचास हजार दाने लगे हैं तो उसमें छोटे दाने कोई दो सौ ही लगेंगे। इसलिए कम मिलने के कारण इनका दाम अधिक है। माला फेरने वाले छोटे दानों को अधिक पसन्द करते हैं। छोटा दाना जावा से आता है।

नेपाल में बड़ा दाना पैदा होता है। यह शरीर पर धारण करने के काम आता है। इसका मूल्य कम है।

मनकों में छिद्र करने का काम वाराणसी में किया जाता है। लोहे के बरमें से छेद करते हैं। छेदने में बहुत-से दाने टूट जाते हैं। यह देखा गया है कि अपरिपक्व दाने ही अधिकतर टूटते हैं।

नेपाल का रुद्राक्ष नौतनवाँ, धरान, विराटनगर आदि तराई की मण्डियों में आता है। सर्दियों में नेपाल के जो मजदूर पैदल भारत में आते हैं वे अपने साथ रुद्राक्ष का बोझ भी ले आते हैं। जंगलों में वृक्षों के नीचे पड़े दानों को वे इकट्ठा कर लेते हैं और यह सोचकर ले आते हैं कि रास्ते का खर्च तो इसे बेचकर वे निकाल लेंगे। नेपालवाला रुद्राक्ष माला की कमी-बेशी के अनुसार आठ रुपये मन से लेकर बीस रुपये मन तक खरीदा जाता है। इस पर नेपाल सरकार की निकासी पाँच रुपये मन पड़ती है। पहले यह चुंगी दो रुपए मन थी। एक व्यक्ति प्रायः मन भर बोझ अपनी पीठ पर ले आता है।

भारत में रुद्राक्ष की खपत सबसे अधिक दक्षिण में है।

उपयोग

एकमुखी दाना अत्यन्त दुर्लभ रुद्राक्ष है। यह भी नेपाल में मिलता है। इसका दाम श्रद्धालु लोग हजारों रुपए तक दे देते हैं। ऐसे एक दाने के लिए

अस्सी हजार रुपए तक के सौदे सन् १९४६ में किये गए थे। दो दाने जुड़े हुए गौरीशंकर कहलाते हैं। उनका विशेष धार्मिक महत्व है। इनके दाने का दाम कम-से-कम दो-सौ रुपये होता है। ऐसे जुड़े हुए दाने नेपाल के दानों में ही मिलते हैं। चौबीसमुखी दाना दस-बारह रुपये प्रतिदाने के हिसाब से बिकता है।

जावा में, जहाँ यह पैदा होता है, इसके बीजों (रुद्राक्ष) का कोई उपयोग नहीं है। हाँ, चीनी लोग इसकी छाल को चिकित्सा के काम में लाते हैं। लकड़ी किसी विशेष उपयोग में नहीं आती, सिवा ईंधन के।

भारतीय धर्म तथा संस्कृति में रुद्राक्ष यद्यपि देर से स्थान पा चुका था, तथापि प्रतीत होता है कि चिकित्सा जगत् में यह सर्वथा उपेक्षित रहा। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट (८ वीं शती), धन्वन्तरि (८०० ई० प० से पूर्व), नरहरि (१२ वीं शती), भावमिश्र (१५०० ई० प०) आदि आयुर्वेद के लेखकों ने रुद्राक्ष का वर्णन तक नहीं किया। अमरसिंह (५००–८०० ई० प०) ने भी इस पवित्र पौधे का नाम तक नहीं गिनाया।

शिवभक्तों में सामान्य रूप से विश्वास किया जाता है कि रुद्राक्ष को धारण करने से रक्त का उच्च दबाव नहीं होता। रुद्राक्ष माला के जप से सब कामों की सिद्धि होती है। अब कहीं-कहीं आयुर्वेद औषधियां बनाने वाले भी रुद्राक्ष की भस्म बना कर रोगों में बरतने लगे हैं।

आमवात (रहुमेठिज्म) में फल का उपयोग किया जाता है। टायफायड जैसे दीर्घकालीन ज्वरों में रुद्राक्ष लाभदायक माना जाता है। सिर के रोगों में फल का प्रयोग किया जाता है। अपस्मार के दौरों में फल लाभदायक समझा जाता है। पित्त विकारों में छाल का काढ़ा दिया जाता है। रक्तस्राव में छाल का काढ़ा उपयोगी है। हैजे के लिए रुद्राक्ष लाभदायक माना जाता है। अपचन में छाल का काढ़ा देते हैं। इस तरह धार्मिक पवित्रता के साथ इसका दवा के रूप में भी महत्व है।

वाराणसी का निर्माण ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व

खुदाई में प्राप्त अवशेषों से पुष्टि

वाराणसी विश्वविद्यालय द्वारा राजघाट के ध्वस्त किले में की जा रही खुदाई के परिणामस्वरूप वाराणसी के पुराने इतिहास तथा यहाँ के पुराने निवासियों के सम्बन्ध में जानकारी मिली है। खुदाई से इस बात की पुष्टि हो गयी है कि वाराणसी का निर्माण ईसा पूर्व के एक हजार के दौरान किसी समय शुरू हुआ था और १७ वीं शताब्दी तक होता रहा। इस दौरान काफी परिवर्तन हुए।

डा. नारायण ने बताया कि खुदाई में मिट्टी की छसौ ऐसी ईंटें मिली हैं जिनपर ईसा से दो शताब्दी पूर्व से लेकर ईसा की आठवीं शताब्दी तक के विभिन्न युगों के व्यक्तियों के नाम खुदे हैं।

ताँबे तथा लोहे की नोकदार कीलें, छुरे, खूँटियाँ आदि भी मिली हैं। पत्थर की वस्तुओं में एक पत्थर का शिवलिंग मिला है। गुप्तपूर्व काल की वस्तुओं में दो नारी मूर्त्तियाँ मिली हैं जिनकी आकृतियाँ बड़ी ही भव्य हैं।

बहुत से साँचे आदि भी मिले हैं जिनसे पुराने लोगों के खेलों तथा लेखन आदि का आभास मिलता है। पुरानी इमारतों के अवशेष के रूप में मौर्य काल की एक मिट्टी की दीवार तथा उसके बाद की ईंटों की दीवारें मिली है।

डा. नारायण ने बताया कि अभी प्राचीन काल की सड़कों तथा दरवाजों का पता लगाने के लिए और खुदाई होनी है।

उन्होंने बताया कि इस पवित्र नगरी का पूरा प्राचीन इतिहास मालूम करने के लिए अभी और भी खुदाई करानी होगी।